किशोर सत्संग

परिचय

अक्षरधाम, गांधीनगर

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था एक विश्वव्यापी आध्यात्मिक समाज है । पवित्र नैतिक जीवन के लिए कटिबद्ध और शाश्वत शांति की ओर ले जाती इस धर्मसंस्था का लक्ष्य है - मानव उत्कर्ष । सन् १९०७ में भगवान स्वामिनारायण (सन् १७८१-१८३०) प्रबोधित वैदिक आदर्शों को लक्ष्य में बनाकर ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने इस संस्था की स्थापना की । आज ६२५ सुशिक्षित नवयुवा संतों, करीब ५६०० सत्संग केन्द्रों (संस्कारधाम मंदिरों, बाल संस्कार केन्द्रों, युवासंस्कार केन्द्रों, महिला संस्कार केन्द्रों तथा सत्संग केन्द्रों को मिलाकर) का विश्वव्यापी परिवार रखती है ।

संस्था के ६२५ संतों तथा २५,००० युवकों का विराट स्वयंसेवक दल आध्यात्मिक अभियान के अलावा अनेकविध रचनात्मक प्रवृत्तियों का वहन करता है । चाहे वह बाढ़ दुर्घटना ग्रस्तों की सेवा हो या अकाल राहत अभियान हो; भूकंपराहत, वस्त्रवितरण हो या गाँवसफाई हो ।

शिक्षणक्षेत्र में भी इस संस्था ने अनेकविध कार्य हाथ लिये हैं । गाँवों में प्राथमिक शाला से लेकर अंतर्राष्ट्रिय कक्षा की शालाओं, अद्वितीय छात्रालय और मॅडिकल कॉलिज जैसे अनेक शैक्षणिक स्तर पार किये हैं । विविध रोग निदान केम्प, विश्वविक्रम सर्जक रक्तदान यज्ञ से लेकर हॉस्पिटल सेवा में संस्था ने तबीबी सेवा का क्षेत्र बढ़ाया है । व्यसन मुक्ति के अंतर्राष्ट्रिय आंदोलनों से लेकर एइड्स और पर्यावरण जैसी वैश्विक समस्याओं के हल के लिए जागृति का शंख फूंकती यह संस्था, युनो द्वारा मान्य हुई सामाजिक सेवा संस्था है ।

लंदन और गांधीनगर में अभूतपूर्व संकुल का निर्माण कर संस्था ने युगसिद्धि हांसल की है । जीवन परिवर्तन का ध्येय इस संस्था ने नजर समक्ष रखा है । देश-विदेश में भारतीय संस्कृति-महोत्सवों का आयोजन कर, जनजागृति के व्यापक अभियान द्वारा संस्कार के सनातन पहलुओं को पुष्ट किया है ।

विश्ववंदनीय प्रमुखस्वामी महाराज की निश्रा में संस्था ने विश्वव्यापी कक्षा पर अनेक क्षेत्रीय सेवाओं द्वारा लोकहृदय में अनुपम स्थान प्राप्त किया है ।

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षण श्रेणी की पाठ्यपुस्तक : ८

किशोर सत्संग परिचय

संपादक

साधु श्रीहरिदास

(वाचस्पति)

अनुवादक

योगेन्द्र प्रकाशजी

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अमदावाद - ३८० ००४

KISHORE SATSANG PARICHAY (Hindi Edition)
(Introduction to Swaminarayan Satsang beliefs, traditions and history)
By Shastri Shriharidas

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochāsanwāsi Shree Akshar Purushottam Swāminārāyan Sansthā.

Inspirer: HDH Pramukh Swāmi Mahārāj

Presented by:
Bochāsanwāsi Shree Akshar Purushottam Swāminārāyan Sansthā
Shāhibaug, Amdāvād - 380 004. India.

Publishers:
Swāminārāyan Aksharpith,
Shāhibaug, Amdāvād - 380 004. India.

1st Edition:
February 1999. Copies: 3,000

Warning:
Copyright: ©Swāminārāyan Aksharpith
This book is published by Swāminārāyan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swāminārāyan Aksharpith, Shāhibaug, Amdāvād. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

ISBN: 81-7526-139-0

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था, अमदावाद - ४.

प्रेरक : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : कॉपीराईट : स्वामिनारायण अक्षरपीठ

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की परवानगी लेनी आवश्यक है ।

प्रथम आवृत्ति : फरवरी, १९९९, ३,०००

कीमत : रू. १५-००

मुद्रक एवं प्रकाशक :
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद-३८० ००४

निवेदन

श्रीजीमहाराज के द्वारा प्रवर्तित उपदेश एवं नियमों को सत्संगियों में प्रचलित करने की आज बहुत आवश्यकता है । इस प्रथा एवं आदेशों के अनुसरण से ही सत्संगियों का सच्चा आदर्श जीवन बन सकता है । वे कुसंग का त्याग करके आदर्श सत्संगी हो सकते हैं और जीवन में परम श्रेय सिद्ध कर सकते हैं ।

इस पुस्तिका में शिक्षापत्री के सामान्य नैतिक नियम, स्वाभाविक चेष्टा, श्री स्वामिनारायण मंत्र की महिमा, श्री गुरुभजनस्तोत्रम्, सत्संग-सत्संगी-कुसंगी, नियम-निश्चय-पक्ष, धर्म-ज्ञान-वैराग्य-भक्ति के संबंध सरल समझ, कीर्तन, सुभाषित, दृष्टांतकथा, वचनामृत एवं स्वामी की बातों का निरूपण और श्रीजीमहाराज ने वचनामृत में मान्य किये हुए एवं दूसरे उत्तम संत और हरिभक्तों के प्रेरणादायी चरित्रों का इस पुस्तिका में सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है । आशा है यह पुस्तिका सत्संगी वाचकों को बहुत उपयोगी होगी ।

सत्संग शिक्षण परीक्षा के अभ्यासक्रम के एक भाग के रूप में इस पुस्तिका की रचना की गई है । तृतीय परीक्षा 'सत्संग परिचय' परीक्षा की पुस्तिका आपके हाथों में रखते हुए हमें प्रसन्नता है ।

स्वामीश्रीजी तथा प्रकट गुरुहरि स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी-प्रमुखस्वामी महाराज को प्रसन्न करने के लिये सभी सत्संगी बच्चे, युवक एवं जिज्ञासुवर्ग इस अभ्यासक्रम में भाग लें और सत्संग परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर वे प्रमाणपत्र प्राप्त करें यही प्रार्थना है ।

- संपादक मंडल

कृपा कथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित तथा पोषित युवा-प्रवृत्तियों का विस्तार पूरे वेग से हो रहा है । इस युवा-प्रवृत्ति से जुड़े युवकों की आकांक्षाओं तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने और उन्हें भगवान स्वामिनारायण द्वारा स्थापित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धान्तों के प्रति अभिमुख करने के लिए बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था संचालित श्री अक्षरपुरुषोत्तम (स्वामिनारायण) युवक मंडल के प्रकाशन विभाग ने क्रमबद्ध पुस्तिका प्रकाशन की योजना बनाई है ।

इन पुस्तिकाओं के माध्यम से पाठशाला के स्तर पर सत्संगी बालकों, युवकों तथा मुमुक्षुओं को व्यवस्थित, निरंतर एवं शुद्ध ज्ञान सरल भाषा में देने का विचार किया है । भगवान स्वामिनारायण द्वारा स्थापित आदर्शों के पालन और प्रचार-हेतु ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा प्रस्थापित यह संस्था, इन प्रवृत्तियों द्वारा उक्त आदर्शों का, संप्रदाय की भव्य प्रणाली का और इसके माध्यम से महान हिन्दू धर्म और संस्कृति का प्रचार करेगी ।

स्वामिनारायण भगवान के इस संदेश को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाना ही इस प्रवृत्ति का लक्ष्य है । इन पुस्तिकाओं का प्रकाशन भिन्न भिन्न भाषाओं में करने की योजना है । आशा है कि संप्रदाय से जुड़े तथा संप्रदायेतर सभी धर्मप्रेमी मुमुक्षु इस प्रवृत्ति का स्वागत करेंगे और इसमें तन, मन और धन से संपूर्ण सहयोग करेंगे ।

बालकों, युवकों तथा जिज्ञासुओं को प्रोत्साहित करने के लिए इन पुस्तिकाओं के आधार पर परीक्षाएँ लेकर उन्हें प्रमाणपत्र दिए जाएँगे । इस पुस्तिका को तैयार करने में पूज्य ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे तथा किशोरभाई दवे और अन्य जिसने भी सहकार दिया है उन सभी को शुभ आशीर्वाद ।

- शास्त्री नारायणस्वरूपदास (प्रमुखस्वामी महाराज)
का अति हेतपूर्वक जय श्री स्वामिनारायण

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयतेतमाम् ॥

हम सभी स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम सभी श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ॥

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें है भय नहीं किसीसे, जन्मे हैं मृत्यु के लिए ॥

हमने है यज्ञ आरंभा, सदा बलिदान हम देंगे ।
हमारा अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान के लिए ॥

हम सभी श्रीजी की संतान, अक्षर में वास हमारा है ।
स्वधर्मी भभूत रमाई है, अब हमें शर्म किसके लिए ॥

मिले हैं मोती-से स्वामी, हुए हम पूर्णकाम सभी ।
प्रगट पुरुषोत्तम पाये, संत से मुक्ति के लिए ॥

अनुक्रमणिका

१. शिक्षापत्री १
२. कीर्तन : हे हरि हरि... ..... ७
३. गलुजी ८
४. भालचन्द्र सेठ (भाईचन्दभाई) १०
५. मूर्तिपूजा १३
६. श्री स्वामिनारायण मंत्र की महिमा १५
७. मित्रभाव १५
८. नाजा जोगिया १७
९. बड़ी रामबाई (कड़वीबाई) २०
१०. मन्दिर २२
११. गुरुभजनस्तोत्रम् ३४
१२. लक्ष्मीचंद सेठ ३५
१३. दामोदरभाई ३९
१४. सत्संग, सत्संगी और कुसंग ४१
१५. विष्णुदास ४५
१६. हिमराज शाह ४७
१७. वचनामृत ५२
१८. राजबाई ५६
१९. सुन्दरजी बढ़ई ६०
२०. लीलाचिन्तामणि ६२
२१. नियम, निश्चय और पक्ष ७३
२२. गुंदाली गाँव के दो काठी हरिभक्त ७५
२३. परमचैतन्यानन्द स्वामी ७९
२४. कीर्तन : रूडा लागो छो... ..... ८२
२५. अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी की बातें ८३
२६. स्वरूपानन्द स्वामी ९१
२७. धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति ९४
२८. सुभाषित ९७
२९. गोरधनभाई ९९

किशोर सत्संग परिचय

१. शिक्षापत्री

(सामान्य नैतिक नियम, अनुभाग-१)

किशोर सत्संग प्रवेश में, हमने शिक्षापत्री में उपदिष्ट कुछ सामान्य नैतिक नियमों का अध्ययन किया है । अब यहाँ हम, मुमुक्षु को अपने आध्यात्मिक-उत्थान के लिए जिन आध्यात्मिक, साहचर्य और सदाचरण के नैतिक नियमों की आवश्यकता होती है उसका अध्ययन करेंगे ।

आध्यात्मिक विवेक

किसीको भी देवता, तीर्थस्थान, ब्राह्मण, पतिव्रता या ब्रह्मचारिणी स्त्री, संत और वेदों की निन्दा नहीं करनी चाहिए, और न ही किसीको सुननी चाहिए । असुरबुद्धि और पतित व्यक्ति ही तीर्थस्थानों, मूर्तियों और शास्त्रों की निन्दा किया करते हैं और फलस्वरूप उनका और उनकी संतानों का विनाश हो जाता है । ऐसे व्यक्तियों को पापी एवं अज्ञानी समझें । ऐसे नास्तिकों एवं पतित व्यक्तियों से जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक सम्पर्क एवं सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए । श्रीजीमहाराज ने वचनामृत में भी ऐसा कहा है । (वच. ग. म. ६)

अत: हंसी में भी निन्दा मत करो । यदि असदाचारी व्यक्ति निन्दा कर भी रहा हो, तो तुम्हें उसकी सुननी नहीं चाहिए । वेद शब्द का प्रयोग स्वामिनारायण सम्प्रदाय में 'वचनामृत', 'शिक्षापत्री', 'स्वामी की बातें' और अन्य शास्त्रों के लिए भी हुआ है । अत:, इन ग्रन्थों की भी कभी आलोचना नहीं करनी चाहिए और न ही किसीको इनकी आलोचना सुननी चाहिए । पतिव्रता स्त्री की निन्दा करने से मना करके, श्रीजीमहाराज ने स्त्रियों में पतिव्रता-निष्ठा के मूल्य को बल दिया है और इस प्रकार उन्हें महान आदर प्रदान किया है ।

श्रीजीमहाराज ने कहा है कि यदि मेरे हरिभक्त शिव या अन्य देवताओं के मन्दिरों के सामने से जा रहे हों, उन्हें चाहिए कि आदरपूर्वक श्रद्धा एवं करबद्ध नमन करें । यदि कोई अश्रद्धा से दर्शन करने जाता है तो वह देव के प्रति अपराध करता है (२१,२२)

मेरे हरिभक्त को विष्णु, शिव, गणपति, पार्वती, और सूर्य इन पाँच

देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा-आदर रखना चाहिए ।

किसीको उन ग्रन्थों का आदर या मान नहीं करना चाहिए, जो चतुराई से या मक्कारी से श्रीजीमहाराज या उनके पूर्व हुए अवतारों का खंडन करते हैं । चतुराई या मक्कारी से वे राम और कृष्ण और अन्य अवतारों को साधारण मनुष्य, या मनगढंत बताते हैं और तर्कबद्धता से उनकी दिव्यता को झूठा बताते हैं । यहाँ एक बात का विशेष उल्लेख कर दें, श्रीजीमहाराज सर्वोपरि भगवान हैं, वे सभी अवतारों के अवतारी हैं और वे कारण के भी कारण हैं और गुणातीतानन्द स्वामी अनादि अक्षरब्रह्म हैं । भगवान शाश्वत दिव्य रूप से अभिव्यक्त हैं और सर्वकर्ता हैं और हमेशा प्रगट रूप में रहते हैं । इसलिए श्रीजीमहाराज को निराकार या अकर्ता या अन्य अवतारों के समान कहना उनके दिव्य रूप की निन्दा समझना चाहिए ।

शास्त्रों की भाषा रहस्यपूर्ण है और कभी-कभी भ्रम उत्पन्न कराती है । अत: श्रीजीमहाराज ने कहा है कि शास्त्रों की व्याख्या को केवल साक्षात्कारी सत्पुरुषों के मुख से सुनना चाहिए । तभी सत्य का साक्षात्कार हो सकता है । जब भगवान को ज्योतिस्वरूप कहा जाता है तो इसका जागतिक अर्थ नहीं है लेकिन तब उनका शाश्वत दिव्य स्वरूप ही अर्थ समझना चाहिए । इस प्रकार से अन्य अवतार भी उपासना के योग्य हैं । इसलिए वे ग्रन्थ जो चतुराई से इन अवतारों की दिव्यता को नकारते हैं उनको कभी मान्यता नहीं देनी चाहिए । (२९)

गुरुओं तथा गुणी महापुरुषों का किसीको तिरस्कार नहीं करना चाहिए । गुरु भी भगवान का दूसरा रूप है । *'गुरु: साक्षात् परब्रह्म'* । अपने गुरु की अवज्ञा करने से व्यक्ति अपने सभी सतकर्मों और गुणों को क्षीण कर देता है । (३५)

मेरे हरिभक्तों को चाहिए कि वे गुरु, राजा, वयोवृद्धों, त्यागियों, विद्वानों, तपस्वियों का आदर करें और जब भी ये छ: में से कोई व्यक्ति उसके पास आए वह अपने स्थान से खड़ा हो जाए, आदर से स्वागत करे और उन्हें आसन दे । ये सभी आदर के पात्र हैं ।

सभा में किसीको अपना एक पैर जाँघ पर रखकर नहीं बैठना चाहिए या गुरु, देवता या राजा के सामने घुटनों से ऊपर वस्त्र करके नहीं बैठना

चाहिए, क्योंकि इस स्थिति में बैठना उनका अपमान करना तथा असभ्यता है । (६९,७०)

मेरे हरिभक्तों को चाहिए कि वे आचार्यों से कभी तर्क-वितर्क न करें, उनका आदर करना चाहिए, और अपनी सामर्थ्य के अनुसार भोजन, वस्त्र और धन से सेवा करना चाहिए । आचार्य के आगमन का पता लगने पर, हरिभक्तों को चाहिए कि आगे बढ़कर बीच रास्ते में उनका आदर से सत्कार करें और कीर्तन-धुन करते हुए उन्हें अपनी बस्ती में लाएँ और उनके विदा के समय भी उनके साथ गाँव-नगर की सीमा तक समूह में जाकर उन्हें आदर से विदा करें । (७१-७२)

मेरे पुरुष हरिभक्त महिलाओं से कभी आध्यात्मिक प्रवचन न सुने, चाहे वे कितनी भी पवित्र हों या चाहे कितनी भी कठोरता से धर्म-सदाचार के नियमों का पालन करती हों या चाहे उनकी ब्रह्म-परब्रह्म में कितनी भी निष्ठा क्यों न हों । पुरुष को, स्त्रियों का संग या वे व्यक्ति जो स्त्रियों का संग करते हों, उनके संग से जैसे मोह और बन्धन होते हैं वैसे अन्य किसी प्रसंग से नहीं होते । इसलिए ही श्रीजीमहाराज ने पुरुषों और महिलाओं की अलग अलग सभाओं का निर्माण किया है । वचनामृत में कहा गया है, 'स्त्रियाँ हरिभक्त हैं, फिर भी उनका अधिक महत्व नहीं समझना चाहिये, क्योंकि इस महत्व के बहाने मन में उनका मनन होने से वे स्वप्न में आती हैं... यदि इस बात को न्यून महत्व दिया गया तो उससे विघ्न उत्पन्न हो जाता है । उसी प्रकार स्त्रियों को भी पुरुषों का महत्व समान रूप से समझना चाहिए । यदि वे ऐसा नहीं समझेंगी तो इस कारण स्त्रियों के लिये भी बड़ा विघ्न उपस्थित होता है ।' (ग.अं. २४)

सभी हरिभक्त पुरुष और स्त्रियाँ जो उत्सवों के अवसर पर या नित्य प्रति(श्रीकृष्ण के) मन्दिर में जाते हैं उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि पुरुष स्त्रियों के और स्त्रियाँ पुरुषों के स्पर्श से बचें । मन्दिर से बाहर आने के पश्चात् सामान्य व्यवहार करें । स्त्रियों के दर्शन-स्पर्श से भगवद्दर्शन में विक्षेप होता है, इन्द्रियों की चपलता बढ़ती है, फलत: संकट पैदा हो सकता है ।

बिना सोचे-समझे शीघ्रता से कोई काम मत करो । सामाजिक व्यवहार का काम करना हो तो बहुत सोच-विचारकर और बड़ों तथा सत्पुरुषों से

परामर्श करके करना चाहिए, किन्तु धर्म विषयक कार्य तुरन्त करना चाहिए । यह शरीर नश्वर है इसलिए धर्मकार्य कल करना हो तो आज करें और जो शाम को करना है वह अब करें (कल करना है सो आज कर, आज करना है सो अब, पल में प्रलय होयगी फिर करेगा कब) । मृत्यु के पश्चात् जीव के साथ स्थूल कुछ भी नहीं जाता केवल धर्म जाता है ।

सभी दानों में, विद्यादान सबसे बड़ा दान है, इसलिए, विद्वानों को चाहिए कि वे प्राप्त विद्या का दान कर कृतार्थ हो जायें । (३६)

मेरे सभी हरिभक्तों को धर्म के साथ भगवान की भक्ति करनी चाहिए । महिमा की ओट में धर्म का त्याग मत करो । कितने ही भक्त महिमा और भक्ति को निमित्त बताकर अधर्म का आचरण करने से डरते नहीं है । यह देखकर आस्तिक व्यक्तियों की धर्मश्रद्धा डिग जाती है । प्रत्येक को चाहिए कि वह अपने इष्टदेव को सबकुछ का कारण व सबकुछ का रक्षक समझे और साथ ही अज्ञानी मनुष्यों की निन्दा के भय से भगवान की सेवा का त्याग न करें । (३७)

मेरे हरिभक्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार द्वारिका आदि तीर्थों की यात्रा करें और दीन जनों के प्रति दयाद्रवित हों । उन्हें गढपुर, वरताल, अहमदाबाद, जूनागढ, छपैया, अयोध्या और अन्य तीर्थस्थलों की यात्रा करनी चाहिए । 'भगवान अपने अक्षरधाम सहित इस पृथ्वी के ऊपर पधारते हैं' (ग.प्र. ७१) इस सिद्धांत के अनुसार गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज ने बोचासण, सारंगपुर, गोंडल, अटलादरा, गढपुर, भादरा आदि में मन्दिर बनवाये और उनमें अक्षर और पुरुषोत्तम की मूर्तियों को पधरायी है । उन्हें उत्तम तीर्थस्थान समझकर वहाँ की यात्रा करनी चाहिए । जंगमतीर्थ जो भगवान के परम भागवत संत हैं उनमें अपना मन दृढ़ रखना चाहिए । (८३)

भूतप्रेत आदि का उपद्रव होने पर 'नारायण कवच' या 'हनुमान स्तोत्र' का जाप करना चाहिए । वास्तव में जो प्रगट श्रीहरि के उपासक हैं उन्हें उनसे सम्बन्धित - प्रगट प्रभु से सम्बन्धवाले मंत्र स्तोत्र के पाठ करना चाहिए । जनमंगल स्तोत्र और सर्वमंगल स्तोत्र ऐसे स्तोत्र हैं । किन्तु मेरे हरिभक्तों को अन्य किसी क्षुद्र देव के स्तोत्र या मंत्रादि का पाठ नहीं करना चाहिए ।

संगशुद्धि

मेरे हरिभक्तों को ऐसे व्यक्तियों से उपदेश-कथावार्ता नहीं सुनना चाहिए जिनका उपदेश सुनने से श्रीकृष्ण भगवान की भक्ति से और अपने धर्म से विचलित होना पड़े । दूसरे शब्दों में, जिस उपदेशक में श्रद्धा-भक्ति न हो या भगवान श्रीजीमहाराज के प्रति जिसे भक्ति न हो उससे ऐसा कुछ नहीं सुनना चाहिए । सुनने से श्रोता भक्त का कल्याण नहीं होता । जो अपने ऊपर किए गए उपकार को भूल जाता है और जो सज्जन व्यक्ति को अपने वचन, क्रिया आदि से धोखा देता है ऐसे कृतघ्नी व्यक्ति का संग न करें । जो चोर, पापी, व्यसनी, पाखंडी, कामी एवं धोखेबाज-ठग हैं - इन छः प्रकार के व्यक्तियों का संग न करें, इनका संग करने से अपनी बुद्धि भी मलिन हो जाती है । (२५, २६, २७)

ज्ञान या भक्ति का आलम्बन लेनेवाले जो व्यक्ति काम, द्रव्य और भोजन के प्रति अतिशय लोलुप हो, पाप करने में हिचकिचाता न हो ऐसे व्यक्ति का संग किसीको नहीं करना चाहिए । धोखेबाज हमेशा माहात्म्यज्ञान की चादर ओढ़कर तथा यह कहकर कि 'भगवान तो अधमोद्धारण हैं, पतितपावन हैं और एकबार स्वामिनारायण का नाम ले लेने से सारे पाप-ताप मिट जाते हैं, चूँकि उनका आश्रय बड़ा बलवान है ।' ऐसा कहता हुआ जो काम, द्रव्य एवं भोजन में आसक्त रहते हों, ऐसों के संग से व्यक्ति का आध्यात्मिक पतन हो जाता है जैसे स्त्री के संग से होता है । यह विश्वजनीन सत्य है । जैसे पुरुष को स्त्री-संग से मना किया गया है वैसे ही स्त्रियाँ भी पुरुष के संग से मोक्ष पथ से गिर सकती हैं । श्रीजीमहाराज कहते हैं, 'जिस पुरुष को द्रव्यादि का लोभ, स्त्रियों के बीच बैठने-उठने की वासना, स्वादिष्ट पदार्थों में जिह्वा की आसक्ति, देहाभिमान, कुसंगी से स्नेह तथा सम्बन्धियों से प्रेम बना रहता है, उसे जीवन में और मरने के बाद कभी भी सुख नहीं मिल पाता ।' (ग.अं. ३८) । कोई व्यक्ति ऐसा संग रखकर स्वप्न में भी सुख की कैसे आशा कर सकता है ? इसलिए, हरिभक्त को हमेशा धर्म-मर्यादा में रहना चाहिए तथा धर्मनिष्ठ रहते हुए भगवान के परम एकान्तिक संतों का प्रतिदिन संग करना चाहिए । अर्थात् दर्शन-पूजन, वचनपालन आदि के रूप समागम करना चाहिए । ऐसा करने से सन्मार्ग में श्रद्धा भक्ति का उदय तुरन्त होता है । (२८, ३६)

व्यवहार शुद्धि

जगन्नाथपुरी में, जगन्नाथजी के मन्दिर की प्रसादी के सिवाय किसी भी स्थान में, किसी भी अयोग्य व्यक्ति के घर से अग्राह्य अन्न-जल ग्रहण नहीं करना चाहिए, यहाँ तक कि प्रसाद और चरणामृत भी । अन्न-जल देनावाला व्यक्ति यदि वर्णाश्रम धर्म और सदाचार के अनुकूल नहीं है तो उसके छुए अन्न-जल भी नहीं लेना चाहिए । इस सम्बन्ध में श्रीजीमहाराज कहते हैं, 'पाँच विषयों को समझे बिना कोई पुरुष उनका उपभोग करेगा तथा सार-असार का विवेक नहीं रखेगा और अगर वह नारदसनकादिक - जैसा भी होगा तो भी उसकी बुद्धि नष्ट हो जायगी । ऐसी स्थिति में यदि देहाभिमानी की बुद्धि का नाश हो जाय तो उसके लिये क्या कहा जाय ?' (ग.प्र. १८) (२०)

सत्संगी हरिभक्त को अपने दैनिक जीवन में भी किसी से कभी भी रिश्वत नहीं लेनी चाहिए । क्योंकि भ्रष्टधन व्यक्ति की बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है और जड़ से नष्ट कर देता है । (२६)

हमारे आश्रित पुरुषों को चाहिए कि वे स्त्रियों के साथ विवाद-तर्क वितर्क न करें । क्योंकि स्त्रियों में कुछ स्वाभाविक दुर्गुण होते हैं जिनसे अनर्थ होने की सम्भावना रहती है । इसी प्रकार वे राजा और उसके अधिकारियों, राजपुरुषों से विवाद न करें तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति हो, वेद-पुराणों के विद्वान हों, और शस्त्रधारी हो उनसे भी । उनका अपमान करने और क्रोधित कर देने से अपने ही सर्वनाश की सम्भावना पैदा हो जाती है । (३४-३५)

किसीके साथ विश्वासघात मत करो । क्योंकि धोखा दिए गए व्यक्ति को बहुत हानि होती है । उसकी अंतरात्मा को दुःख होता है । तथापि स्वयं कितना भी गुणवान हो तो भी आत्मप्रशंसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि मिथ्याभिमानी ही आत्मश्लाघा करता है । जो महान होता है वह वास्तव में विनयी होता है, निर्मानी होता है । वह आत्मप्रशंसा से दूसरों को न तो प्रभावित करता है और न ही अपनी श्रेष्ठता उन पर लादता है । (३७)

बहुत सोच-विचार कर जो जिसके योग्य हो वही कार्य उसे देना चाहिए अन्यथा नहीं देना चाहिए । अपने सम्बन्धियों तथा सेवकों के अपने

सामर्थ्य के अनुसार अन्न-वस्त्रादि की यथायोग्य व्यवस्था करनी चाहिए ।

जो पुरुष जैसा गुणवान हो, जाति, कुल, विद्या, तप, योग, ऐश्वर्य, प्रताप आदि विशिष्ट गुणवान हो - उसीके अनुसार, देशकाल के अनुसार उसका आदर करो, बोलो, अन्य रीति से नहीं । सामाजिक विवेक सम्बन्धी उत्तम विचार यहाँ श्रीजीमहाराज प्रस्तुत करते हैं । (६६, ६७, ६८)

किसीकी गुप्त बातों को किसी भी स्थान पर उद्घाटित मत करो । ऐसा करने से विश्वासघात का पाप लगता है । गुप्त बात के प्रकट हो जाने से उसके हृदय को आघात लगता है, दुःख होता है । तुम्हें परद्रोह का पाप लगता है । यदि तुम्हारी इच्छा दूसरे के दोषों को सुधारने की है तो उसे हितबुद्धि-भावना से प्रेमपूर्वक एकान्त में समझाओ । परन्तु उसको नीचा मत दिखाओ । जीव का जिस रीति से भी आदर होता हो उसी रीति से आदर करना चाहिए, किन्तु यदि भले-बुरे का समान रूप से सत्कार किया जाये तो सत्-असत् का विवेक नष्ट हो जाता है । इसलिए समदृष्टि के सिद्धांत का प्रयोग करने में मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । (७५)

२. कीर्तन

हे हरि हरि प्रभु करुणा करी,
नरनारी उगारवाने नरतनु धरी...
अक्षरधामी छो बहुनामी, स्वतंत्र सर्वाधार,
कळिमळ बळ जे प्रबळ थयो, हरि तेना छो हरनार...१
असुर अधर्मी महाकुकर्मी, देता जनने दुःख,
मूळथी तेनां कुळ उखाड़ी, संतने दिधां सुख...२
वादी हराव्या बंध कराव्या, हिंसामय बहु याग,
दारु माटी चोरी अवेरी, तेह कराव्या त्याग...३
पाज धर्मनी आज शुं बांधी, लीधी अरिनी लाज,
धन त्रिय त्यागी साधु कीधा, सर्वोपरि महाराज...४
विश्वविहारी अज अविकारी, अवतारी अलबेल,
कल्पतरु छो सुख देवामां, छोगाळा रंग छेल...५

३. गलुजी

महेमदावाद के निकट डडुसर का किसान गलुजी राजपूत अपने खेत से लौटकर घर आया । वह भोजन करने को तैयार हो रहा था । उसकी माताजी ने दीवा जलाया और उसकी थाली परोस दी । तभी वडथल गाँव का धर्मसिंह हरिभक्त श्रीजीमहाराज का पत्र लेकर वहाँ आया । उस पत्र में लिखा था, 'जैसे ही तुम्हें यह पत्र प्राप्त हो, तुरन्त ही गाड़ी में अपना सारा सामान भर लेना और अपनी माताजी को घर पर छोड़कर तुम अकेले ही वडथल चले आना ।' पत्र पढ़कर गलुजी महाराज की आज्ञानुसार सारा सामान एकत्र कर, गाड़ी में रख, उसी रात श्रीजीमहाराज के पास वडथल पहुँच गया ।

गलुजी से पुराने बैर का बदला लेने की इच्छा से कुछ गरासियों ने गलुजी के घर को घेर लिया । छप्पर फाड़कर वहाँ से वे घर में घुस गए । गलुजी के घर में एक दीया टिमटिमा रहा था । गलुजी की माँ खाट पर बैठी थी । उसके हाथ में माला थी । वह 'स्वामिनारायण स्वामिनारायण' नाम जप रही थी । एकाएक छत से आदमियों को उतरते देखकर वह धक से रह गई । किन्तु साहस कर उसने कड़ी आवाज़ से पूछा, 'वहाँ कौन है ?'

एक आवाज़ आई, 'गलुजी कहाँ है ?'

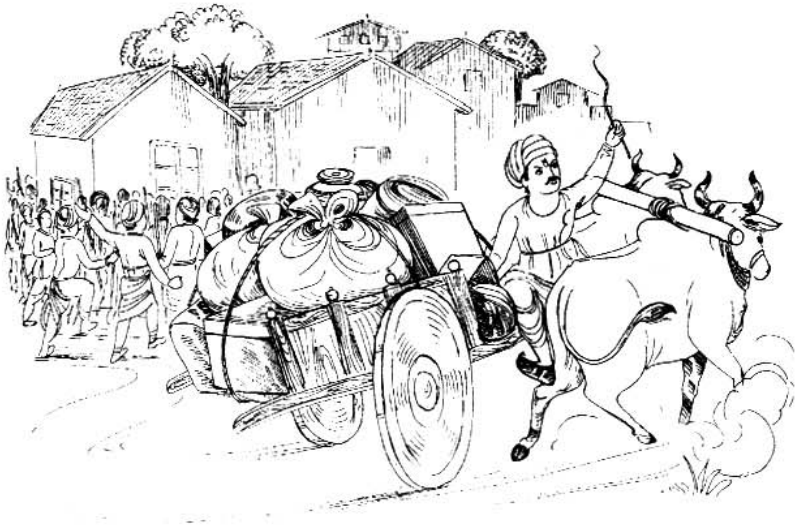

वृद्ध माता ने कहा, 'गत रात्रि को वडथल भगवान स्वामिनारायण ने उसे बुलवाया था । वह बिना खाना खाए वहाँ चला गया । वह अपना सारा सामान भी ले गया ।'

गरासिये एकदम आश्चर्य में पड़ गए । वे वृद्धा के पास गए और बोले, 'माँ ! तुम्हारा भगवान सच्चा है और उतना ही सच्चा आपका बेटा गलुजी अपने भगवान का भक्त है । आज हमने आपके घर को लूटने और गलुजी को जान से मार देने का निश्चय किया था, किन्तु भगवान ने उसकी रक्षा कर ली ।' वह वृद्धा बेधड़क सब सुन रही थी । उसका भगवान स्वामिनारायण पर दृढ़ विश्वास था ।

उसने उत्तर दिया, 'देखिए आप ! मेरे गलुजी की रक्षा करने के लिए महाराज ने उसे वडथल बुला लिया । इसलिए सारा वैरभाव छोड़ दोगे तो भगवान तुम्हारी भी रक्षा करेंगे ।'

गरासियों को यह बात अच्छी लगी । उन्होंने कहा, 'माँ, आपकी बात ठीक है । आज से गलुजी के भगवान ही हमारे भगवान । गलुजी के साथ अब हमारा कोई वैरभाव नहीं । हमें उन भगवान के आशीर्वाद दिलवाना ।' यह कहकर उन्होंने माँ के चरण छूए और वहाँ से चले गए ।

एक दिन की बात है कि महाराज को डडुसर पधारना था । उसी दिन गलुजी की माताजी ने अपना शरीर छोड़ दिया । सभी भाइयों ने मिलकर विचार किया, 'हमें अब क्या करना चाहिए ?' गलुजी उस समय बोले, 'महाराज पधार रहे हैं, यदि हम माँ की देहक्रिया करने में व्यस्त रहेंगे तो महाराज डडुसर से चले जाएँगे । अत: जब तक महाराज ठहरें तब तक के लिए हमें देह को ढककर टाँड पर रख देना चाहिए ।' उन्होंने ऐसा ही किया, माँ की मृत्यु का किसी को पता भी नहीं चलने दिया ।

अगले दिन प्रात: जब श्रीजीमहाराज संत मंडल के साथ पधारे तब गलुजी सादे कपड़े पहनकर, ढोल-तासे के कलशोर के साथ महाराज की अगवानी के लिए गये । श्रीजीमहाराज को दण्डवत् प्रणाम किया । महाराज और संत-मंडली का गाँव के सेठ की हवेली पर ठहरने का प्रबंध था । ब्राह्मणों से भोजन बनवाया गया था, महाराज को थाल अर्पित किया और संत मण्डल को भोजन करवाया ।

तत्पश्चात् महाराज ने कहा, 'आज तो हमें वरताल पहुँचने की शीघ्रता है अगली बार जब हमारा आना होगा तब आप जैसा कहेंगे वैसे हम आपकी इच्छा पूरी करेंगे ।' गलुजी और अन्य भक्त धूमधाम से गाँव से बाहर एक मील तक महाराज और संत मण्डली के साथ गए, वहाँ विदा दी ।

श्रीजीमहाराज ने गलुजी को रोककर कहा, 'गलुजी, घर शीघ्र लौटो और अपना काम निबटा दो ।' इतना कहकर महाराज आगे चले गए । किन्तु मुक्तानन्द स्वामी ने तब पूछा, 'महाराज, गलुजी को क्या काम समाप्त करना है ?'

यह सुनकर श्रीजीमहाराज ने कहा, 'आशा है कि तुम सब मेरी बात पर शक न करोगे, उसकी माता ने शरीर छोड़ दिया है, धाम चली गई है । हमारी सेवा करने के लिए उसे ढककर टाँड पर रख दिया है और हमारी अगवानी की । ऐसा केवल गलुजी ही कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं ।'

जब संतों और हरिभक्तों ने सुना तो उनके मुँह से निकल गया, 'अहो, दरबार सचमुच में सच्चा महान है । जिसमें ऐसी निष्ठा होती है वही लोकलाज का त्याग कर सकता है । दूसरे के सामने तो धर्मसंकट खड़ा हो जाता है । परन्तु भगवान के समागम से जीव शुद्ध हो जाता है । ऐसी समझ जिसकी हो उसकी भक्ति को भगवान स्वीकार करते हैं ।' इस प्रकार उन्होंने गलुजी की बहुत प्रशंसा की ।

४. भालचन्द्र सेठ (भाईचन्दभाई)

जब श्रीजीमहाराज सूरत पधारे थे तब हरिभक्तों का उत्साह समाता नहीं था । उन्होंने महाराज का भव्य स्वागत किया और नगर में गाजे-बाजे के साथ उनकी नगरयात्रा निकाली । यह समारोह अद्‌भुत था । ब्रह्मादिक देवताओं के लिए भी दुर्लभ ऐसी श्रीजीमहाराज की प्रत्यक्ष सेवा करके हरिभक्तों ने अपना मनुष्य-जन्म सार्थक माना । अनेक प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों, चंदनपुष्पों के हारों और अन्य अनेक ढंग से तथा विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों को परोसकर श्रीजीमहाराज की प्रेमपूर्वक भक्ति की । सूरत के भावुक भक्तों ने इस प्रकार श्रीजीमहाराज की प्रसन्नता प्राप्त की । वैश्य जाति के श्री भालचन्द्रभाई सभी हरिभक्तों में अग्रगण्य थे । जब महाराज के विरोधियों ने

श्रीजीमहाराज के प्रति भक्तों की ऐसी अनन्य भक्ति तथा श्रीजीमहाराज का प्रौढ़ प्रताप देखा तो उनकी उपद्रव करने की इच्छा मन की मन में ही रह गई । एक कारण यह भी था कि भाईचन्दभाई के समागम से श्री अरदेशर कोतवाल सत्संगी बने थे और वे ही महाराज के महोत्सव का प्रबंध कर रहे थे ।

राजा का कोतवाल श्री अरदेशर पारसी थे और भाईचन्दभाई के परम मित्र थे । उन्होंने एक समय भाईचन्दभाई से पूछा था, 'भाईचन्दभाई ! आपकी जानकारी में ऐसा कोई भगवान इस पृथ्वी के ऊपर प्रगट है जो हमारी प्रार्थना का तुरन्त उत्तर दे और सहायता को दौड़ पडे ?'

भाईचन्दभाई ने उत्तर दिया, 'इस समय तो मेरे इष्टदेव स्वामिनारायण ऐसे भगवान हैं । जब कभी तुम्हें कठिनाई आए, तब स्वामिनारायण का स्मरण करना, वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे ।'

इस घटना के बाद ऐसा हुआ कि अरदेशरभाई की कोतवाल की पदवी राजा ने छीन ली, क्योंकि कुछ द्वेषी लोगों ने राजा के कान भरे थे । अरदेशर नौकरी चली जाने से बहुत निराश हो गए । एक रात जब वे पलंग पर सोने के लिए लेटे तो चिन्ता ने उन्हें घेर रखा था । अचानक उन्हें भाईचन्दभाई की बात याद आ गई ।

उन्होंने प्रार्थना की : 'हे भाईचन्दभाई के भगवान स्वामिनारायण ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, मेरी लाज रखो ।' बारबार ऐसी प्रार्थना करते करते वे सो गये । स्वप्न में श्रीजीमहाराज ने दर्शन दिए । उनके मस्तक पर कुमकुम का तिलक लगाकर कहा, 'कल सबेरे राजा तुम्हें दुबारा सुबेदार बनाएँगे ।' सुबह को जब अरदेशर जागे, तो अपने भाल पर तिलक लगा देखकर आश्चर्यचकित हो गए । जैसा कि श्रीजीमहाराज ने स्वप्न में वचन दिया था उसके अनुसार सबेरे राजा ने बुलाया और मानपूर्वक सुबेदारी सौंपी । उन्होंने भाईचन्दभाई से ये सब बातें बताईं, श्रीजीमहाराज से समागम करने की सच्ची इच्छा व्यक्त की और कहा कि जब श्रीजीमहाराज सूरत पधारेंगे तब भव्य स्वागत करूँगा ।

जब श्रीजीमहाराज सूरत पधारे तब श्री अरदेशर कोतवाल हरिभक्तों के साथ स्वागत करने के लिए ठेठ अश्विनीकुमार घाट तक गए और धूमधाम से श्रीजीमहाराज का स्वागत किया । श्रीजीमहाराज बहुत प्रसन्न हो गए और अपनी पगड़ी स्मृति रूप में प्रदान की और आशीर्वाद भी दिया । श्री

अरदेशरभाई के वंशज आज भी उस पगड़ी को प्रसादी की महिमा समझकर बहुत सम्हालकर रखे हुए हैं ।

भाईचन्दभाई की दृढ़ भक्ति, वैराग्य और भगवान स्वामिनारायण में निष्ठा देखकर बहुत से व्यक्ति उनके साथ समागम करते थे और फिर श्रीजीमहाराज के अनन्य सत्संगी बन गए थे ।

जब श्रीजीमहाराज सूरत में बिराजमान थे, उस समय कथावार्ता में श्रीजीमहाराज ने प्रसंगानुसार यह बात कही, 'जिन्हें कल्याण की इच्छा हो उन्हें धर्म सहित भक्ति करनी चाहिए ।' उस समय भाईचन्दभाई वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने श्रीजीमहाराज से पूछा, 'हे महाराज ! जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाकर आपकी सेवा का अखंड अधिकारी बनाये ऐसी भक्ति का क्या स्वरूप है ? ऐसी भक्ति में जो दृढ़ हो ऐसे भक्त के क्या लक्षण हैं ? और ऐसे भक्त की भगवान में कैसी प्रीति होनी चाहिए ? और ऐसे आश्रित भक्त के प्रति भगवान की कैसी प्रीति होती है ?' भक्ति से संबंधित ये चार प्रश्न पूछे ।

भाईचन्दभाई ऐसी भक्ति के पात्र थे इसलिए श्रीजीमहाराज उनके मुख से इन प्रश्नों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । कारण शास्त्रों का तो जाननेवाला हो परन्तु पात्र (अधिकारी) न हो तो उसे इन प्रश्नों का उत्तर समझ में नहीं आएगा । तत्पश्चात् श्रीजीमहाराज ने भाईचन्दभाई को निमित्त बनाकर चारों

प्रश्नों का उत्तर बहुत विस्तार से दिया । सभा में बैठे समस्त हरिभक्तों को भक्तिरस में डुबा दिया । भाईचन्दभाई की अपने प्रति पराभक्ति देखकर श्रीजीमहाराज बहुत प्रसन्न हुए ।

भाईचन्दभाई श्रीजीमहाराज से ऐसी भक्ति और निष्ठा से जुड़ गए - एक हो गए थे । जहाँ जहाँ उनका बड़ा उत्सव-समैया-सम्मेलन होता वहाँ वहाँ भाईचन्दभाई अपने स्नेही हरिभक्तों-मित्रमंडल के साथ पहुँच जाते और सेवा करके महाराज को प्रसन्न करते ।

५. मूर्तिपूजा

मूर्ति एक आकार है । उस आकार में यदि भाव डाल दिया जाए तो वह आकार मूर्ति बन जाती है । जैसे नृत्य, भावहीन नृत्य कसरत या जिमनास्टिक है । भावपूर्ण कसरत नृत्य बन जाता है । उसकी (आकार की) पूजा को मूर्तिपूजा कहते हैं । भारतीय-वैदिक-हिन्दू संस्कृति में मूर्तिपूजा को उत्तम जीवन विकास के लिए एक महान साधन के रूप में स्वीकार किया गया है । काष्ठ या पाषाण की निर्जीव मूर्ति में मनुष्य को तारने की शक्ति नहीं है । किन्तु जब प्रत्यक्ष भगवान अथवा ब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष द्वारा उसकी विधिपूर्वक प्राण प्रतिष्ठा की जाती है, तब उसमें साक्षात् परमेश्वर का आविर्भाव होता है, और उसके पश्चात् वह पत्थर या काष्ठ मात्र न रहकर मुमुक्षुओं के लिए मुक्ति का माध्यम बन जाता है ।

जैसे लोक में कागज़ की मुद्रा का चलन है । जब एक कागज़ के टुकड़े पर राज्य की मोहर लग जाती है, तब वह अंकित मूल्य की मुद्रा में परिवर्तित हो जाता है । बिना राजकीय मोहर के वह साधारण कागज़ का टुकड़ा है । प्राण प्रतिष्ठा की विधि राजकीय मोहर के समान है । इस विधि के पश्चात् वह मूर्ति पूजा करने के योग्य बन जाती है । उसी प्रकार मूर्ति भी सत्पुरुष के प्रताप से भगवत्भाव वाली बन जाती है । इसीलिए, भक्त लोग मूर्ति में पत्थर या कागज़ की भावना न करके उसे साक्षात् परमात्मा मानकर भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं । जिसके अन्तर में परमात्मा को देखने की दृष्टि आ गई है वह मूर्ति में साक्षात् भगवान को देखता है । इसलिए मुमुक्षुओं को सत्पुरुष और सत्शास्त्र के वचन में विश्वास रखते हुए

श्रद्धापूर्वक मूर्ति में ऐसी दृढ़ भावना करनी चाहिए ।

मूर्ति में परमात्मा साक्षात् निवास करते है । एकलव्य नाम के भील बालक ने द्रोणाचार्य की प्रतिमा बनाकर उस प्रतिमा में गुरु की भावना की, उसकी तीव्र भावना ने मूर्ति को चेतन बना दिया, और वह अर्जुन से भी अधिक धनुर्धर हो गया । ध्रुवजी ने भी नारदजी के उपदेश से मूर्ति पूजा की फिर छः मास में ही परमात्मा के दर्शन किए ।

नरसिंह मेहता को भगवान दामोदर साक्षात् (प्रत्यक्ष) दर्शन देते थे । वरताल में हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति श्री रामप्रताप भाई के साथ बातें करती थी । प्रेमानन्द स्वामी को गोपीनाथजी की मूर्ति नित्य फूलों की माला देती थी । सद्गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी को गोपीनाथजी की मूर्ति में महाराज के दर्शन हुए थे ।

आवश्यकता

मन को विषय वासनाओं से रहित करना बहुत कठिन काम है । गहन अनुभव के पश्चात् महर्षि पतंजलि ने कहा, 'यथाभिमतध्यानाद्वा' जिसे जो सर्वाधिक प्रिय हो उसके ध्यान से मन शान्त होता है । मन को स्थिर करने के लिए किसी भौतिक साधन को प्रतीक बनाने की विशेष आवश्यकता होती है । गीता में कहा है, *'अव्यक्ता हि गतिर्दुःखम्'* अव्यक्त वस्तु में मन को स्थिर करना अति कठिन है । इसलिए कोई प्रतीक होना चाहिए । पतंजलि का अनुभव सबका अनुभव है । जो प्रिय हो वही प्रतीक बन सकता है । भगवान और संत सबके प्रिय है । क्योंकि वे निर्दोष हैं । उस भगवान की मूर्ति में जब भक्त मन के भावों को नवधा भक्ति के रूप में ढाल देता है तब उसका मन स्थिर हो जाता है ।

पंचरात्र शास्त्र में कहा है - जिन मनुष्यों को भगवान की प्रतिमा में पत्थर, धातु, काष्ठ या कागज़ आदि की बुद्धि है उसे अपने गुरु के लिए मनुष्य बुद्धि है और भगवान के भक्त में जाति बुद्धि है, वे मनुष्य अपराधी और नास्तिक बुद्धिवाले हैं ।

श्रीजीमहाराज कहते हैं कि जिन्हें भगवान की मूर्ति में नास्तिक भाव आएगा उन्हें संत और भगवान के लिए भी नास्तिक भाव आएगा ।

परमात्मा सर्व व्यापक हैं । जड़ और चेतन में भी है । फिर भी प्रतिष्ठा

की गई मूर्ति में सर्व प्रकार से विद्यमान हैं । इसलिए मन और इन्द्रियों को स्थिर करने के लिए और परमात्मा की प्राप्ति करने के लिए मूर्ति पूजा एक साधन है ।

६. श्री स्वामिनारायण मंत्र की महिमा

जे स्वामिनारायण नाम लेशे, तेनां बधां पातक बाळी देशे,
छे नाम मारां स्मृतिमां अनेक, सर्वोपरी आज गणाय एक...१
जो स्वामिनारायण एक वार, रटे बीजां नाम रट्यां हजार,
जप्या थकी जे फळ थाय तेनुं, करी शके वर्णन कोण एनुं...२
षडक्षरी मंत्र महासमर्थ, जेथी थशे सिद्ध समस्त अर्थ,
सुखी करे संकट सर्व कापे, अंते वळी अक्षरधाम आपे...३
गायत्रीथी लक्ष गणो विशेष, जाणे ज जेनो महिमा महेश,
ज्यां ज्यां महामुक्त जनो वसाय, आ काळमां तो जप एज थाय...४
जो अंतकाळे श्रवणे सुणाय, पापी घणो ते पण मोक्ष जाय,
ते मंत्रथी भूत पिशाच भागे, ते मंत्रथी तो सद्बुद्धि जागे...५
ते मंत्र जेना मुखथी जपाय, तेना थकी तो जम नासी जाय,
श्री स्वामिनारायण जे कहेशे, भावे कुभावे पण मुक्ति लेशे...६
षडक्षरो छे षट्शास्त्र सार, ते तो उतारे भवसिन्धु पार,
छये ऋतुमां दिवसे निशाये, सर्व क्रियामां समरो सदाये...७
पवित्र देहे अपवित्र देहे, आ नाम नित्य स्मरवुं सनेहे,
जळे करीने तनमेल जाय, आ नामथी अंतर शुद्ध थाय...८
जेणे महापाप कर्यां अनंत, जेणे पीड्या ब्राह्मण धेनु संत,
ते स्वामिनारायण नाम लेतां, लाजी मरे छे मुखथी कहेतां...९
श्री स्वामिनारायण नाम सार, छे पापने ते प्रजळावनार,
पापी घणुं अंतर होय जेनुं, बळ्या विना केम रहे ज तेनुं...१०

७. मित्रभाव

एक राजकुमार था । उसकी मंत्री के पुत्र के साथ गाढ़ी मित्रता थी । एकबार दोनों मित्र एकसाथ शिकार के लिए गए । जंगल में वे रास्ता भूल

गए, रास्ता ढूँढने में बहुत चलना पड़ा । थक गए । एक पेड़ के नीचे राजकुमार ने विश्राम के लिए पैर फैलाए ही कि उसे नींद आ गई । मंत्रीपुत्र उसकी रक्षा के लिए सजग बैठा । थोड़ी ही देर में एक काला नाग फुफकारता हुआ वहाँ राजकुमार को डंक मारने के लिए आया । नाग को मंत्री-पुत्र ने देख लिया । उसने नाग को मारने के लिए अपनी तलवार खींच ली ।

किन्तु आश्चर्य ! नाग तो मनुष्य की भाषा में बोलने लगा : 'यह राजकुमार पिछले जन्म का मेरा शत्रु है । इसके कंठ का रक्त पीने से ही केवल मुझे शान्ति मिलेगी ।'

मंत्री-पुत्र ने कहा, 'इसके कंठ का रक्त मैं तुम्हें दे दूँगा किन्तु तुम इसे डंक मत मारना ।' नाग शान्त खड़ा हो गया और मंत्री-पुत्र को देखने लगा ।

मंत्री-पुत्र ने तुरन्त पत्ते तोड़कर उसका एक दोना बनाया । राजकुमार की छाती पर चढ़कर उसने उसकी गर्दन पर छुरी से छोटा चीरा किया । जैसे ही उसने चीरा लगाया राजकुमार की नींद खुल गई । उसने अपने मित्र को अपनी छाती पर हाथ में छुरी लिए बैठा देखा । किन्तु राजकुमार ने तुरन्त ही अपने नेत्र बंद कर लिये । मंत्री-पुत्र ने कंठ से बहते रक्त से दोना भर लिया और नाग को पान करने के लिए दिया । नाग ने रक्त का

पान किया । उसका बैर शान्त हो गया और शीघ्रता से वहाँ से चला गया । मंत्री-पुत्र ने तत्काल राजकुमार के कंठ में घाव पर वनस्पति की औषधि लगाकर पट्टी बाँध दी ।

थोड़ी देर के पश्चात् राजकुमार जागा । उसने एक शब्द भी नहीं कहा, मानो कुछ भी नहीं हुआ । दोनों ने अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी । जंगल में ही भटकते भटकते दो-तीन दिन बीते तो भी राजकुमार ने कोई चर्चा नहीं की । इससे मंत्री पुत्र को बेचैनी होने लगी । अन्त में वह पूछ ही बैठा, 'जब तुम सो रहे थे, मैं छुरी लेकर तुम्हारी छाती पर चढ़ गया था और छुरी से तुम्हारी गर्दन पर चीरा लगाया था । यह देखो तुम्हारे गले पर पट्टी बंधी है । मुझे आश्चर्य है कि तुम इस विषय में मुझ से कुछ भी क्यों नहीं पूछ रहे हो !!'

राजकुमार ने उत्तर दिया, 'तुम मेरे गहरे मित्र हो । तुमने जो भी किया होगा वह मेरे हित में किया होगा । इसलिए मैं तुमसे कुछ भी नहीं पूछ रहा हूँ ।'

राजकुमार के स्थान पर यदि कोई दूसरा होता तो उसे अवश्य संदेह होता कि मेरे मूल्यवान आभूषणों और स्वर्णमुद्राओं को लेने यह अवश्य चढ़ा होगा । ऐसी कई शंका-कुशंकाएँ हो सकती हैं, परन्तु राजकुमार में सच्चा मित्र भाव था और उसे दृढ़ विश्वास था कि मित्र मेरा कुछ भी अहित करेगा नहीं ।

श्रीजीमहाराज ने कहा, सच्चा मित्रभाव तब कहलाता है जब हमारा मित्र हित की बात हमें दु:ख पहुँचाकर करता है तो भी बुरा न माने । यही सच्ची मित्रता की भावना है ।

ऐसा ही मित्रभाव भगवान और भगवान के संत तथा हरिभक्तों के प्रति हम धारण करें ।

८. नाजा जोगिया

श्रीजीमहाराज ने अपने भक्त नाजा जोगिया की भोंयरा गाँव के मालिक वासुर खाचर के त्रास से रक्षा की थी । नाजा की दृढ़ भक्ति देखकर श्रीजीमहाराज ने उन्हें गढ़पुर में अपने पास रहने के लिए बुला लिया था ।

एकबार प्रागजी पुराणी गीता की कथा कर रहे थे । अर्जुन को भगवान

ने जो विराट रूप दिखाया था उसका प्रसंग आया । नाजा को जिज्ञासा हुई : विश्वरूप कैसा होगा ? श्रीजीमहाराज ने उन पर कृपा करके उन्हें तुरन्त समाधि में डाल दिया । महाराज ने अपने स्वरूप में उन्हें सभी चौदह लोक दिखाए और हाथ पकड़कर ऊपर उठा लिए और अन्त में अपना विश्वरूप दिखाया । परन्तु नाजा जोगिया दृढ़ता गँवा बैठे । इसलिए महाराज उसे समाधि में से सामान्य जीवन में पुन: ले आए ।

एकबार नाजा जोगिया रथ (बैलगाड़ी) चला रहे थे । श्रीजीमहाराज अन्दर लेटे हुए थे । जब रथ जंगल के बीच से जा रहा था जीवाखाचर के दो काठी सवारों ने रथ को रोक लिया और नाजा जोगिया से पूछा, 'तुम्हारे रथ में कौन सो रहा है ?' नाजा जोगिया ने सोचा डाकू हैं । इसलिए वे डरे और बोले, ये तो मेरे मेहमान हैं मैं इन्हें छोड़ने जा रहा हूँ । काठियों ने पूछा, 'क्या ये स्वामिनारायण नहीं हैं ?'

जैसे ही श्रीजीमहाराज ने सुना उन्होंने अपने मुँह पर से कपड़ा हटा दिया और पूछा, 'हाँ, मैं स्वामिनारायण हूँ, तुम्हें क्या काम है ?'

यह देखकर काठी बहुत प्रसन्न हुए, आपस में कहने लगे : 'दादाखाचर का गुरु हाथ लगा है, इसे बरछी से मारो ।' ऐसा कहकर वे दोनों ने रथ के दोनों ओर आकर बरछियाँ उठाईं । किन्तु श्रीजीमहाराज तब ऐसे हुँकारे कि

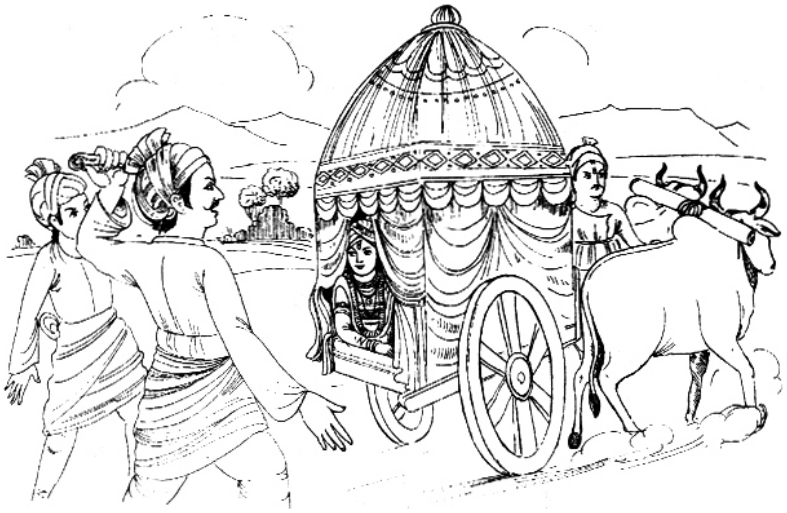

दोनों काठियों के हाथ बरछी उठाए ही रह गए । (स्थिर रह गए)

महाराज ने नाजा जोगिया से कहा, 'तुम रथ हाँकते रहो' जोगिया रथ हाँकते जाते थे और पीछे देखते जाते थे । दूर चले जाने पर भी उन्होंने देखा कि काठी हत्यारे तो वैसे के वैसे ही बरछियाँ ऊँची किए हुए खड़े हैं । इस प्रकार से नाजा जोगिया को महाराज ने अपना प्रताप दिखाया ।

एकबार महाराज जिंजावदर में अलैया खाचर के घर में छिपकर रहे थे । नाजा जोगिया भी उनके साथ ही ठहरे हुए थे । एक दिन महाराज ने नाजा जोगिया से कुश्ती लड़ना शुरू किया । महाराज ने नाजा जोगिया को चारबार छत तक उछालकर भूमि पर पटका । किन्तु नाजा जोगिया को कोई चोट नहीं लगी ।

नाजा जोगिया ने महाराज से कहा, 'हे महाराज ! यद्यपि आपने मुझे चारबार बंडेर तक उछालकर नीचे पटका, परन्तु मुझे चोट क्यों नहीं लगी ?'

महाराज ने उत्तर दिया, 'यदि तुम्हें चोट लग जाती और तुम्हारी हड्डी-पसली चूरचूर हो जाती तो फिर मेरे साथ कुश्ती कौन लड़ता ? मैंने तुम्हारी रक्षा की इसलिए तुम्हें चोट नहीं लगी ।'

श्रीजीमहाराज के धाम में पधारने के बाद नाजा जोगिया ने आचार्य रघुवीरजी महाराज से त्यागी दीक्षा ली, उनका नाम घनश्यामदास रखा था । वे वरताल में रहते थे । किन्तु उत्सव के समय जूनागढ जाते थे । अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी की अंग्रेज के हथियार जैसी पैनी बातों से वे बिंध ही गए । और वे जूनागढ में रहने लगे । एक समय घनश्यामदास (नाजा) सभामण्डप में ध्यान कर रहे थे । गुणातीतानन्द स्वामी पास में बैठे हुए थे । उन्होंने घनश्यामदास से कहा, 'क्या तुम ध्यान कर रहे हो या गढ़डा में सफेद तिलकवाली भैंस के माथे पर हाथ फेर रहे हो ?'

घनश्यामदास कुछ न कह सके क्योंकि ध्यान में वे गढ़डा पहुँच गए थे और वास्तव में सफेद तिलकवाली भैंस के माथे पर हाथ फेर रहे थे । वे स्वामी के चरणों में गिर पड़े और कहा, 'स्वामी मैं तो आपको आधीन (खंडिया) समझ रहा था पर अब निश्चय हो गया कि आप तो चक्रवर्ती सम्राट हो, महाराज के साक्षात् स्वरूप हो । निश्चित ही आप अक्षर हैं ।'

इसके पश्चात् तो घनश्यामदास उनके सभी शिष्यों को कहते, 'ये स्वामी

तो मूल अक्षर का अवतार हैं । अच्छी तरह इन्हें पहचान लो । मैं महाराज के साथ रहा हूँ, इसलिए मैं सोचता था कि मैंने आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त कर ली है लेकिन मुझे अब मेरी कमी का अनुभव हुआ । स्वामी अक्षरब्रह्म हैं, भगवान के रहने के धाम हैं ऐसा अनेकबार श्रीजीमहाराज के मुख से सुना है, किन्तु अक्षर की यथार्थ महिमा तो यहीं जूनागढ में समझ मे आई ।' इस तरह की बहुत सी बातें करते ।

९. बड़ी रामबाई (कड़वीबाई)

बड़ी रामबाई जेतपुर के जीवा जोशी की पुत्री थीं । उनका मूल नाम कड़वीबाई था । उनका विवाह जेतपुर में ही हुआ था । किन्तु पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण वे श्रीजीमहाराज का अखंड भजन करती थीं । उनकी ससुराल का कोई भी व्यक्ति इस बात को (भजन को) अच्छा नहीं समझता था । उनका पति तो असुर-बुद्धि था । उन्हें भजन करते देख लेता तो बहुत कष्ट देता था । वह रात को अपनी चारपाई का पाया कड़वीबाई की छाती पर धर कर पलंग पर लेटकर सो जाता । कड़वीबाई के लिए भजन तो जीवन का अंग था - प्राण था । वे तो भजन करने से थकती नहीं थीं और कठोर यातना भी उन्हें अपने निश्चय से नहीं डिगा सकी थी ।

एकबार वे गा रही थीं 'तेडी जाओ तो अमारा मन ठरे' (प्रभु हमें ले जाओ तो हमारे मन को शान्ति मिले) उस समय आकाशवाणी हुई : भजन

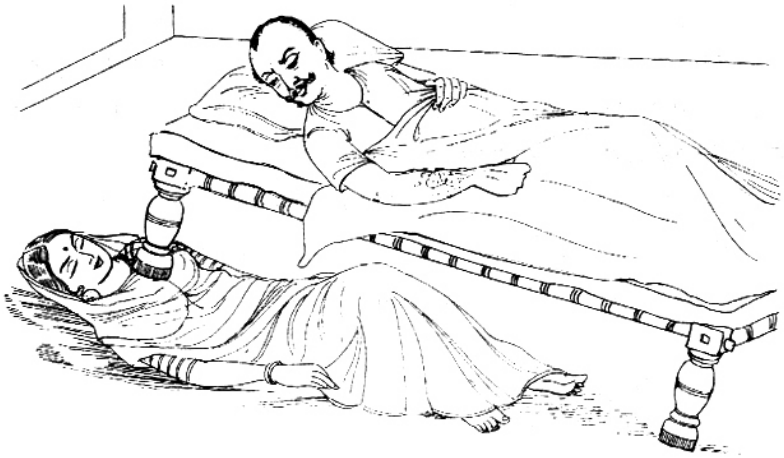

करना हो उसे चूड़ी न पहनना चाहिए और सिर पर बाल नहीं रखने चाहिए । कड़वीबाई को यह सुनकर आश्चर्य हुआ । एक दिन वह अपने भाई शिवराम के साथ पीठवडी में किसी सम्बन्धी से मिलने गईं । वहाँ पुन: वही गीत 'तेडी जाओ तो अमारा मन ठरे,' गाने लगीं । महाराज ने आकाशवाणी के रूप में पुन: वही बात दोहराई ।

शिवराम ने कडवी से कहा, 'बहिन, ये शब्द तो महाराज के हैं ।'

तब कड़वीबाई ने शिवराम से कहा, 'भाई, चलो हम गढ़डा जायें ।'

दोनों भाईबहन गढ़डा गए और महाराज के दर्शन किए । कड़वीबाई के चित्त की वृत्तियाँ महाराज की ओर खिंच गईं और उन्हें महाराज के सर्वोपरि स्वरूप का निश्चय हो गया । तब वे जेतपुर लौट आई ।

कड़वी को भजन-पूजा करने की लगन लग गई थी । तीव्रता भी आई थी । ससुराल में घर के कामकाज करते करते भी उनके मुख से भजन या स्वामिनारायण मंत्र का जाप होता रहता । पति महोदय को तो कड़वी की भक्ति से बड़ी चिड़ थी ही । अत: एक दिन वह बहुत क्रोधित हो उठा, और क्रोध में ही कड़वी से बोला, 'आज से तू मेरी माँ और बहन ।'

कड़वी तो यही चाहती थीं । सुनकर अन्दर से प्रसन्न हो गईं, तो भी उसने पूछा 'पक्की है न ।'

अब तो गरज कर बोला, 'हाँ पक्की, पक्की, पक्की ।'

कड़वीबाई ने भी तुरन्त कहा, 'तुम भी अब से मेरे बाप-भाई ।' यह कहकर वहीं उसके सामने अपने सौहागरूपी चूड़ियों को तोड़ डाला और कैंची से केशों को कतर दिया । पति के मरने के पश्चात् की धार्मिक स्नान की विधि करके पूरी कर दी ।

जब उसके जाति-कुल के ब्राह्मणों ने यह सुना तो क्रोध से पागल हो उठे और उन्होंने उनकी हत्या कर देने का निश्चय किया । उन्नड बापु, वहाँ का दरबार जो कि सत्संगी था वह हाथ में तलवार लेकर कड़वीबाई को बचाने दौड़ा । जब ब्राह्मणों ने दरबार को तलवार हाथ में लिए आते देखा वे कड़वी को छोड़कर भाग गए । उस रात्रि को ही श्रीजीमहाराज ने कड़वीबाई को दर्शन दिए और कहा, 'चिन्ता न करो, यहाँ से उत्तर दिशा में कल बहुत वर्षा होगी और भादर नदी में बाढ़ आ जाएगी । तुम बाढ़ आने पर नदी तट

पर जाना, हमारी मूर्ति का ध्यान करते हुए पानी में कूद पड़ना । उस समय जल में तुम्हें मेरी छवि दिखाई देगी । मेरी मूर्ति का पीछा करते हुए नदी को तैरकर पार करना ।' इतना कहकर महाराज अदृश्य हो गए ।

दूसरे दिन दोपहर कडवी ने अपनी सास से कहा, 'नदी से पानी भरने जा रही हूँ ।' इतना कहकर मिट्टी के दो घड़े उठाए और चल दीं । सास के कुछ कहने की उसने प्रतीक्षा नहीं की और वे नदी के तट (घाट) आ गईं । ऊपर के क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा होने के कारण नदी में भयंकर बाढ़ आई हुई थी । कड़वी ने तो महाराज का स्मरण किया और तुरन्त ही महाराज की मूर्ति सामने प्रकट हो गईं । कड़वी पानी में कूद गईं । किनारे पर खड़े बहुत से आदमियों ने उन्हें नदी में गिरते हुए देखा था, किन्तु वह तो महाराज की मूर्ति का आलंबन कर नदी पार हो गईं । उस पार महाराज के दो पार्षद, उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे । कड़वी बैलगाडी में बैठीं और गढ़डा आ गईं ।

महाराज कड़वीबाई को देखकर बहुत प्रसन्न हुए । महाराज ने उनका नया नाम रामबाई रखा । रामबाई गढ़डा में जीवुबा के साथ रहीं और हजारों स्त्रियों को सत्संग की महिमा से अवगत कराया ।

सद्गुरु प्रेमानन्द स्वामी ने इस प्रसंग के ऊपर कीर्तन पद की रचना की । जिसमें उन्होंने गाया : 'मेरो कंगन निकारी गयो रे' ।

जब महाराज को इस का पता चला तो उन्होंने प्रेमानन्द स्वामी को डांटा और पूछा, 'हमने ऐसा कब किया है ?' उस समय मोटीबा (बड़ी बहन) ने रामबाई की ओर संकेत किया । उनको देखकर महाराज मंद मंद हँसने लगे ।

रामबाई देहपर्यन्त गढपुर में मोटीबा के साथ रहकर भजन करती रहीं ।

१०. मन्दिर

श्रीजीमहाराज ने वचनामृत में कहा है, 'हमने यह विचार करके परमेश्वर की उपासना करते रहने के लिये त्याग को शिथिल करके मन्दिर बनवाये हैं । उनमें यदि थोड़ा त्याग रहेगा, तो उपासना बनी रहेगी । इससे अधिकाधिक जीवों का कल्याण होगा ।' श्रीजीमहाराज का इस पृथ्वी पर प्रगट होने के छः

हेतुओं में से एक हेतु यह भी था कि 'अपने सर्वोपरि स्वरूप, अपनी भक्ति सहित उपासना तथा ज्ञानमार्ग का उत्तम प्रतिपादन करना और दृढ़ रीति से उसकी स्थापना करना । इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए तथा कालान्तर में सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए श्रीजीमहाराज ने वरताल, गढपुर, जूनागढ, अहमदाबाद, भुज, धोलेरा आदि स्थानों पर विशाल मन्दिरों का निर्माण कराया और उनमें लक्ष्मीनारायण आदि देवों की मूर्तियों को पधराया । इस तरह से उन्होंने भक्तजनों के लिए भक्ति मार्ग की स्थापना की ।

अहमदाबाद

श्रीजीमहाराज ने सबसे पहले अहमदाबाद में मन्दिर का निर्माण कराया । तब पेशवाई के स्थान पर अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था । स्वामिनारायण संप्रदाय के अनेक विरोधियों एवं विद्वेषियों का प्रयत्न था कि अहमदाबाद में स्वामिनारायण सम्प्रदाय का प्रभाव न बढ़े । उस समय अहमदाबाद के कलेक्टर सर एन्ड्रु डनलप और अन्य वरिष्ठ अधिकारी जनरल सर गोर्डन से संतों और पार्षदों सहित श्रीजीमहाराज ने भेंट की थी ।

एक बार सर एन्ड्रु डनलप जंगल में शिकार खेलने गए थे । जब वे शेर को गोली मार रहे थे, तो गोली चूक गई । वह शेर के कान को बींधती हुई निकल गई । उस समय क्रोधित सिंह ने श्री डनलप पर झपट्टा मारा । किन्तु श्रीजीमहाराज अपने दिव्यरूप में वहाँ प्रकट हुए और डनलप महोदय को हवा में ऊपर उठाकर बचा लिया था । वर्षों पूर्व की इस घटना का स्मरण डनलप को हो आया, जब उनकी परस्पर भेंट हुई थी । जब वे प्रत्यक्षरूप से महाराज से मिले तो उन्हें निश्चय हो गया कि इन्होंने ही मेरी प्राण रक्षा की थी । कलेक्टर श्रीजीमहाराज की ओर आकर्षित हुआ और उसने मन्दिर निर्माण के लिए महाराज की पसंद की भूमि देने का वचन दिया ।

श्रीजीमहाराज ने सद्गुरु

ब्रह्मानन्द स्वामी और सद्‌गुरु आनन्दानन्द स्वामी को मन्दिर के निर्माण कार्य की देखभाल के लिए नियुक्त किये । ब्रह्मानन्द स्वामी की व्यावसायिक बुद्धि थी । उन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान पर भूमि लेकर पक्का लेख भी लिखवा लिया । आनन्दानन्द स्वामी ब्रह्मानन्द स्वामी की निगरानी में निर्माण के दैनिक काम की देखभाल करते थे, वे बुद्धिमान एवं व्यवहारिक मनुष्य थे । बहुत ही थोड़े समय में मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा हो गया ।

यह तीन शिखरों वाला मन्दिर है । इस मन्दिर के उत्तर दिशा की ओर श्रीजीमहाराज ने भरतखंड के राजाश्री नरनारायण देव की प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १८७८ (सन् १८२२) फाल्गुन शुक्ला तीज के दिन वेदोक्तविधि से की । अहमदाबाद का मन्दिर बन जाने के पश्चात् श्रीजीमहाराज बहुत दिन तक अहमदाबाद में रहे । उन्होंने मुमुक्षुओं को आशीर्वाद दिए और वचनामृत के उपदेश देकर प्रसन्न किया । इस मन्दिर में महाराज की प्रसादी की अनेक वस्तुएँ सुरक्षित संगृहीत हैं ।

भुज

कच्छ में श्रीजीमहाराज अनेक बार विचरण के लिए गए, वहाँ अनेक लीलाएँ करके अपने आश्रितों को अपार सुख दिया । सुन्दरजीभाई, हीरजीभाई, गंगाराम मल्ल, रामानन्द स्वामी के प्रमुख शिष्यों में से थे । श्रीजीमहाराज के सम्पर्क में आने के पश्चात् उन्हें उनके दिव्य स्वरूप का निश्चय हो गया और उनके आश्रित हो गए । श्रीजीमहाराज ने भुज में मन्दिर निर्माण करने का निश्चय किया । निर्माण काम के लिए सद्‌गुरु वैष्णवानन्द स्वामी की नियुक्ति की ।

भुज में तीन शिखरोंवाले मन्दिर का निर्माण किया गया । यहाँ मन्दिर के मध्य भाग में संवत् १८७६ (सन् १८२०) वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन वेदोक्तविधि से नरनारायण की मूर्तियों की स्थापना की गई । कच्छ के अनेक स्थानों पर श्रीजीमहाराज की प्रसादी की अनेक वस्तुएँ संगृहीत की गई हैं ।

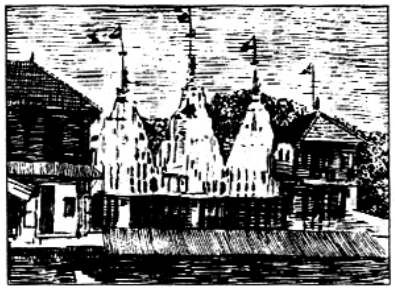

वरताल

अहमदाबाद का मन्दिर पूर्ण हो जाने के पश्चात् श्रीजीमहाराज ने सद्‌गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी को वरताल जाकर मन्दिर निर्माण का काम प्रारम्भ करने की आज्ञा दी और कहा, 'ध्यान रखना कि मन्दिर छोटा ही हो ।' ब्रह्मानन्द स्वामी ने वरताल पहुँचकर जोबन पगी, वासन सुथार, नारायणगिरि बाबा, कुबेरभाई, रणछोडभाई आदि स्थानीय हरिभक्तों से मन्दिर के लिए उचित स्थान खोजने के लिए परामर्श किया । जोबन पगी ने ईंटों का प्रबंध करने का दायित्व लिया । ब्रह्मानन्द स्वामी नगर में घूम घूम कर भिक्षा माँग कारीगरों को खिलाने के लिए सीधा एकत्र करते थे । स्वामी के मण्डल में रहनेवाले अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी ने महाराज की सर्वोपरि स्वरूप की सबको अखंड वार्ता सुनाने का दायित्व लिया ।

यद्यपि श्रीजीमहाराज की एक शिखर करने की ब्रह्मानन्द स्वामी को आज्ञा दी थी, किन्तु ब्रह्मानन्द स्वामी महाराज की आन्तरिक इच्छा जानते थे अत: उन्होंने तीन शिखरोंवाला विशाल मन्दिर निर्माण करने का कार्य आरम्भ किया । उसी हिसाब से नींव खुदवाई । महाराज ने उन्हें परामर्श दिया 'अपनी सौढ़ के अनुसार पैर फैलाना ।' अत: उन्होंने महाराज को संदेशा भेजा, 'आपके प्रताप से यहाँ लक्ष्मी का ढेर लग जाएगा ।' श्रीजीमहाराज ने प्रसन्न होकर अनुमति प्रदान कर आशीर्वाद भिजवाया ।

ब्रह्मानन्द स्वामी ने विशाल कमल के आकार के तीन शिखरोंवाले मन्दिर का निर्माण करवाया । मन्दिर का मुख्य प्रवेशद्वार पूर्वाभिमुख है, उसकी संरचना अति मनोहर है । श्रीजीमहाराज ने संवत् १८८१ (सन् १८२४) कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन वेदोक्त विधि से लक्ष्मीनारायण देव की प्रतिष्ठा की । उसके बाद एक ओर उन्होंने राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित की और दूसरी ओर अपनी प्रतिमा हरिकृष्ण महाराज के नाम से स्थापित की ।

धोलेरा

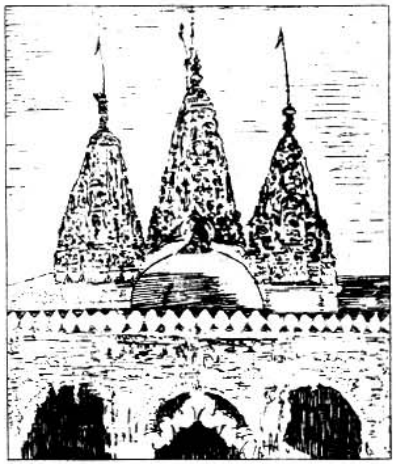

यह नगर धंधुका से १८ मील दूर समुद्र के किनारे बसा हुआ है । श्रीजीमहाराज ने धोलेरा में मन्दिर-निर्माण-कार्य के लिए वैराग्यमूर्ति निष्कुलानन्द स्वामी को पूर्ण उत्तरदायित्व सौंप दिया था । मन्दिर निर्माण-कार्य के लिए दरबार श्री पुंजाजीभाई ने अपनी भूमि कृष्णार्पण की थी । यहाँ पाँच शिखरोंवाला विशाल मन्दिर है इसके केन्द्रीय द्वार उत्तराभिमुख है ।

श्रीजीमहाराज ने संवत् १८८२ (सन् १८२६) वैशाख शुक्ला त्रयोदशी के दिन मन्दिर के मध्य में मदनमोहन देव की मूर्ति की प्रतिष्ठा की । निष्कुलानन्द स्वामी ने यहीं रहकर सत्संग का प्रसार किया और बहुत से ग्रंथों की रचना की ।

जूनागढ़

श्रीजीमहाराज ने पंचाला के अपने परम भक्त झीणाभाई को वचन दिया था कि जूनागढ़ में विशाल मन्दिर बनवाएँगे । जब श्रीजीमहाराज जूनागढ़ पधारे थे तब मुमुक्षु नवाब हमीद खां महाराज से अत्यधिक प्रभावित हुए थे और उसने महाराज को मन्दिर के निर्माण के लिए हर सम्भव सहायता की । झीणाभाई के पुत्र दादाभाई ने अपनी वाडी की भूमि महाराज को मन्दिर के लिए अर्पित कर दी । जूनागढ़ मुस्लिम राज्य था और अधिकांश प्रशासक नागर ब्राह्मण थे । नागर लोग स्वामिनारायण सम्प्रदाय के कट्टर विरोधी थे । इसलिए, महाराज ने ब्रह्मानन्द स्वामी को जूनागढ मन्दिर का निर्माण करवाने के लिए भेजा । क्योंकि वे जानते थे कि वे ही नागरों का सामना कर सकते हैं । गुणातीतानन्द स्वामी को भी भेजा कि नागरों को अपनी कथावार्ता से वश में कर लेंगे ।

गोपालानन्द स्वामी की प्रार्थना पर गुणातीतानन्द स्वामी ने संवत् १८८२

(सन् १८२६) में वैशाख शुक्ला तीज को मन्दिर का शिलान्यास मुहूर्त किया । निर्माणकार्य में नागरों ने अनेक अड़चने डालीं । राज्य के मुख्य प्रशासक रंगीलदास ने नागरों को भड़काया कि बनते हुए मन्दिर को नष्ट कर दें । सभी हरिभक्त असंमजस में पड़ गए । वे गोपालानन्द स्वामी के पास गए और रंगीलदास की सारी योजना का ब्यौरा दिया । स्वामी ने कहा, 'अब रंगीलदास का अन्त आ गया है ।' ऐसा कहकर अपनी कांख से एक बाल तोड़कर भूमि पर फेंक दिया । उसी समय रंगीलदास घोड़ी पर बैठकर कहीं से लौट रहा था, वह अपनी घोड़ी से नीचे गिरा और उसकी बरछी उसके पेट में घुस गई और वह वहीं मर गया । तब गोपालानन्द स्वामी अपने साथ में ब्रह्मानन्द स्वामी को लेकर नवाब के पास आए । उस समय गोपालानन्द स्वामी ने नवाब को शरबत में ही समाधि लगवा दी । समाधि में नवाब ने देखा कि अनेक पयगम्बर महाराज की स्तुति और सेवा कर रहे हैं । ऐसे दर्शन कर नवाब महाराज की ओर अत्यधिक आकर्षित हुआ । मन्दिर के निर्माण में जो भी बाधाएँ थीं वे सब उसने दूर कर दीं ।

श्रीजीमहाराज ने संवत् १८८४ (सन् १८२८) मै वैशाख कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को बड़ी धूमधाम बाजे-गाजे, ढोल, शहनाई वादन के मधुर वातावरण में राधारमण देव की मूर्ति की स्थापना की । श्रीजीमहाराज ने नवाब को वचन दिया था, 'हम जूनागढ मन्दिर में अपने जैसा फकीर रखेंगे ।' तद्नुसार श्रीजीमहाराज ने अपने स्वरूप अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी को जूनागढ मन्दिर का महन्त बनाकर भेजा ।

गढ़पुर

श्रीजीमहाराज के पुनीत करकमलों से बना यह अन्तिम मन्दिर है । श्रीजीमहाराज लगभग २८ वर्षों तक दादाखाचर के दरबार में रहे थे और दादाखाचर और उनके परिवार पर अपनी अनुपम कृपा की वर्षा की थी ।

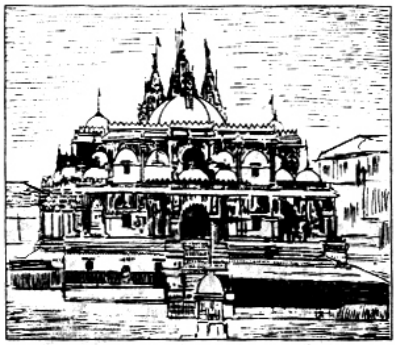

महाराज की तीव्र इच्छा थी कि घेला नदी के किनारे पहाड़ी पर मन्दिर का निर्माण करें । किन्तु जीवाखाचर ने उनसे सहयोग नहीं किया (उसने अपनी भूमि नहीं दी) महाराज को इससे बड़ा दु:ख हुआ, महाराज बहुत उदास हो गए और गढ़डा से सारंगपुर चले गए । ये समाचार जब लाडुबा, दादाखाचर आदि ने सुने तो वे तुरन्त सारंगपुर गए । बहुत आग्रह करके महाराज को गढ़पुर वापस लाए । दादाखाचर ने मन्दिर निर्माण के लिए अपना दरबार महाराज को कृष्णार्पण कर दिया ।

इस मन्दिर के निर्माण में महाराज ने बहुत रुचि ली । महाराज ने अपने संतों और हरिभक्तों को आज्ञा दी कि घेला नदी से जब स्नान करके लौटें तो एक पत्थर उठा कर लाएँ । महाराज स्वयं भी पत्थर लाते थे । देखते देखते तीन शिखरोंवाला दो मंजिला भव्य मंदिर खड़ा हो गया । श्रीजीमहाराज ने संवत् १८८५ (सन् १८२९) में आश्विन मास की शुक्ला द्वादशी को गोपीनाथ महाराज की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की । यहाँ ही लक्ष्मीवाडी, घेला नदी, दादाखाचर का दरबार, राधावाव आदि अनेक स्थान हैं जहाँ श्रीजीमहाराज ठहरे और घूमे थे । ये स्थान श्रीजीमहाराज के प्रसादी के धाम हैं ।

श्रीजीमहाराज सर्वोपरि, सर्व अवतारों के अवतारी हैं ऐसी उनके चरित्रों एवं उपदेशों से सहज ही प्रतीति हो जाती है । किन्तु मनुष्यों को महाराज के स्वरूप का ज्ञान तुरन्त नहीं होता है इसलिए उन्हें समझाने के लिए महाराज ने अवतारों की मूर्तियाँ मन्दिर में स्थापित कीं । वरताल में अपनी मूर्ति स्थापित करने का विचार था, किन्तु इस विचार का बहुत तीव्र विरोध हुआ तो उन्होंने उस मूर्ति को हरिकृष्ण नाम से पधराया । ऐसी परिस्थिति में अपने सर्वोपरि पुरुषोत्तम स्वरूप और अपने अनादि भक्त धाम-स्वरूप अक्षरब्रह्म की मूर्तियों की स्थापना का कैसे सोचा जा सकता था ?

गुणातीतानन्द स्वामी अनादि अक्षरब्रह्म के अवतार हैं और महाराज के रहने के धाम हैं । सहजानन्द स्वामी सर्वोपरि भगवान हैं । यह शुद्ध उपासना

का वैदिक मार्ग है । अक्षर और पुरुषोत्तम की साकार स्वरूप की प्रतिष्ठा द्वारा सम्प्रदाय में उपासना की शुद्धि हो सकती है । ऐसी शुद्ध उपासना के प्रवर्तन के लिए अक्षरपुरुषोत्तम-ब्रह्मपरब्रह्म की सर्वोपरि युगल स्वरूपों की धातु की मूर्तियों को स्थापित करने के लिए शास्त्रीजी महाराज (यज्ञपुरुषदासजी) ने भव्य मन्दिरों का निर्माण किया ।

बोचासण

संवत् १८६५ (सन् १८०९) में बोचासण के काशीदास से श्रीजीमहाराज ने यह स्वीकार किया था, 'यहाँ, इस स्थान पर, एक विशाल मन्दिर का निर्माण होगा और मैं अपने धाम सहित बिराजूँगा ।' उस जगह पर शास्त्रीजी महाराज ने ठीक सौ वर्ष पश्चात् भव्य एवं विशाल मन्दिर की स्थापना कड़े विरोध के मध्य की । विरोधियों ने अनेक अड़चनें खड़ी कीं पर जहाँ महाराज की मन्दिर बनवाने की इच्छा हो उसे कौन रोक सकता है ?

हीराभाई मुखी जोबन पगी जैसा लुटेरा था, शास्त्रीजी महाराज के द्वारा वह शुद्ध हो गया, पूरा बदल गया, हृदय- परिवर्तन का यह एक चमत्कार था । बन्दूक हाथ में लिए घूमनेवाला अब हाथ में माला लेकर घूमने लगा, यह आध्यात्मिक परिवर्तन था । जब विरोधियों ने देखा कि हीराभाई ने अपना सहयोग शास्त्रीजी महाराज को दे दिया है तो वे भय के मारे चुप हो गए । संवत् १९६३ (सन् १९०७) वैशाख शुक्ला दशमी को बड़ी धूमधाम के साथ अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हुई । लोक में जय जयकार हुआ ।

सारंगपुर

आज सारंगपुर में जहाँ मन्दिर है, वहाँ 'यहाँ मै विशाल मन्दिर का शिलान्यास कर रहा हूँ,' ऐसा कहकर श्रीजीमहाराज ने अपनी घोड़ी पर उस स्थान की परिक्रमा की थी और अपने प्रिय भक्त जीवाखाचर को वचन दिया

था कि यहाँ बड़ा मन्दिर निर्माण होगा और अपने भक्त के साथ विराजित होंगे । इस स्थान पर शास्त्रीजी महाराज ने २४ एकड़ भूमि लींबडी के दीवान से स्थानीय हरिभक्त जैसे भीमा सेठ, नागजी सेठ, रूखड़ खाचर आदि के सहकार से प्राप्त की और गगनचुम्बी मन्दिर का निर्माण किया । जो धन की कमी के कारण से चिन्तित थे कि मन्दिर कैसे बनेगा वे प्रवाह के समान पैसा आता देखकर दंग रह गए । मन्दिर का निर्माण पूर्ण हुआ । कुछ द्वेषी विरोधियों ने लींबडी के ठाकुर को बहकाया कि वे शास्त्रीजी महाराज पर दबाव डालें कि मन्दिर के मध्य भाग में राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित करें । किन्तु शास्त्रीजी महाराज ने दृढ़ता से कहा, 'ठाकुर, हम अक्षरपुरुषोत्तम के लिए सबकुछ छोड़कर साधु बने हैं और उसके लिए समस्त कष्टों को सहन करते हैं ।' ठाकुर सहित सबका समाधान हो गया । संवत् १९७२ (सन् १९१६) में वैशाख शुक्ला षष्ठी को गुजरात और काठियावाड़ के विभिन्न स्थानों से पधारे हजारों हरिभक्तों की उपस्थिति में मन्दिर के मध्य भाग में महाराज, गुणातीतानंद स्वामी और गोपालानन्द स्वामी की मूर्तियों की स्थापना की ।

गोंडल

जूनागढ़ के बड़े बड़े सद्‌गुरुओं की प्रबल इच्छा थी कि 'अक्षरदेरी' के स्थल पर भव्य मन्दिर का निर्माण किसी तरह से किया जाए । श्रीजीमहाराज की अनुकम्पा से विरसद के दीवान श्री जवेरभाई अमीन के पुत्र श्री हरिभाई अमीन ने मन्दिर के लिए भूमि दान कर दी । २७ मास की अल्पावधि में शास्त्रीजी महाराज ने एक भव्य मन्दिर-'अक्षर मन्दिर' का निर्माण किया । गुजरात के हरिभक्तों

ने धन और जनशक्ति से अभूतपूर्व सहायता की और स्वामी की आध्यात्मिक शक्ति का परिचय सबको मिल गया । संवत् १९९० (सन् १९३४) के वैशाख मास की शुक्ला दसवीं को अक्षरपुरुषोत्तम की धातु की मूर्ति की वेदविधि से प्राण-प्रतिष्ठा हुई । शास्त्रीजी महाराज ने अपने परम प्रिय योगीजी महाराज को अक्षर मन्दिर के प्रथम महन्त नियुक्त किया ।

अटलादरा

स्वामी शास्त्रीजी महाराज ने अटलादरा में मुलु मेतर और कृष्ण माली की जगह, जो श्रीजीमहाराज के चरणों से भूमि पवित्र हो गई थी, वहाँ मन्दिर बनवाने का निश्चय किया । अटलादरा गाँव के मुखी (मुखिया) मथुरभाई मकनदास पटेल, संसारी आदमी थे और भोगों में डूबे रहते

थे । शास्त्रीजी महाराज ने उनके जीवन को पलट दिया । उन्होंने शास्त्रीजी महाराज को अटलादरा बुलाया और अटलादरा में मन्दिर निर्माण करने की प्रार्थना की और इस पवित्र कार्य में हर सम्भव सहायता करने का वचन दिया । कानम तथा वाकल प्रदेश के हरिभक्त बहुत प्रभावित हुए और मन्दिर-निर्माण के कार्य से प्रसन्न हुए । उन्होंने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया । संवत् २००१ (सन् १९४५) के आषाढ शुक्ला तृतीया को वैदिक मंत्रों के उच्चारण से महाराज, गुणातीतानन्द स्वामी और गोपालानन्द स्वामी की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा बहुत धूमधाम से हुई ।

गढ़पुर

सत्संग विस्तार और मन्दिर निर्माण का कार्य पूर्ण वेग से साथ साथ चल रहा था । गढ़पुर में श्रीजीमहाराज ने स्वयं मन्दिर के लिए जो स्थल पसंद किया था, गढ़पुर में टीले के ऊपर उन्होंने भूमि नाप ली थी और वचन दिया था कि मैं मन्दिर बनवाकर भक्तों के साथ, भगवान की मूर्तियाँ स्थापित करके रहूँगा । अब वचन के साकार होने का समय आ गया था । शास्त्रीजी महाराज भावनगर के कलेक्टर गोविंदसिंह चूडासमा और नगरसेठ श्री मोहनलाल मोतीचंद की सहायता से टीले की भूमि मिल गई । दादा खाचर

और जीवा खाचर के वंशज भाण खाचर के सहयोग से संगमरमर का सुन्दर मन्दिर निर्माण किया गया ।

स्वधाम जाने से पूर्व शास्त्रीजी महाराज गढ़डा में मूर्तिपूजन करने के लिए गढ़डा पधारे । उन्होंने कहा, 'प्रतिष्ठा की आरती योगीजी महाराज करेंगे ।' संवत् २००७ (सन् १९५१) वैशाख शुक्ला चतुर्थी को सम्प्रदाय की धर्मधुरा योगीजी महाराज को सौंपकर शास्त्रीजी महाराज अंतर्धान हो गए । शास्त्रीजी महाराज के धाम पधारने से भक्तों को अतिशय दु:ख हुआ । संवत् २००७ (सन् १९५१) वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दसवीं को योगीजी महाराज ने लगभग ५०,००० भक्तों की उपस्थिति में मंगल गीतों, वेदमंत्रोच्चार के साथ महाराज, गुणातीतानन्द स्वामी और गोपालानन्द स्वामी की मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न करायी । सम्पूर्ण वातावरण वेदमंत्रों से गुंजित हो गया । सभी के अंतर में शान्ति फैल गई ।

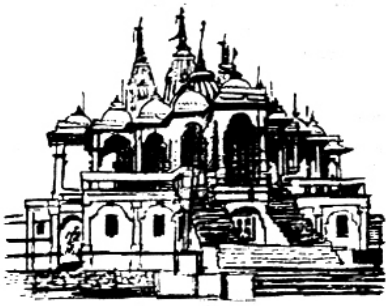

अहमदाबाद

शास्त्रीजी महाराज ने शाहीबाग क्षेत्र में मन्दिर के लिए एक स्थल चुना था । वे कहा करते थे कि श्रीजीमहाराज साबरमती में स्नान करने के लिए शाहीबाग के रास्ते आया-जाया करते थे । यहाँ एक बाग था वे उस बाग में बैठा करते थे । इस प्रकार से यह स्थान पवित्र हो गया था । भगवान की प्रसादी का स्थान हो गया था । इसलिए शास्त्रीजी महाराज की इच्छा के अनुसार इस स्थल पर तीन शिखरोंवाला विशाल मन्दिर का निर्माण किया गया । श्रीपुर के भक्तों की लगन एवं उत्साह के कारण मन्दिर का निर्माण बहुत ही कम समय में हो गया । संवत् २०१९ (सन् १९६३) के वैशाख शुक्ला द्वादशी को महाराज, स्वामी और गोपालानन्द स्वामी की संगमरमर की प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा योगीजी महाराज के करकमलों से संपन्न हुई । गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में अक्षरपुरुषोत्तम का जयजयकार हुआ ।

भादरा-गुणातीतनगर

अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी ने जिस स्थल पर जन्म लिया था उस

पर योगीजी महाराज ने एक शिखरवाले सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया । गुजरात, काठियावाड के समस्त हरिभक्तों ने उत्साह से सेवा की । संवत् २०२५ (सन् १९६९) वैशाख शुक्ला षष्ठी को महाराज, स्वामी और गोपालानन्द स्वामी की संगमरमर की प्रतिमा की वैदिक रीति से प्राण प्रतिष्ठा की गई । हालार प्रदेश के हरिभक्तों के हृदय आनन्द से भर गए ।

सांकरी

सांकरी-सूरत जनपद के बारडोली तालुका में एक छोटा गांव है । वहाँ श्री सोमाभाई नारणभाई पटेल, प्रतिष्ठित नागरिक एवं महाराज के महान प्रेमी भक्त ने अपने साथी नागरिकों के सहयोग से एक छोटा सा मन्दिर बनवाया था । योगीजी महाराज को प्रसन्न करने के लिए इस मन्दिर में अक्षरपुरुषोत्तम की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने का उसने संकल्प किया । अचानक योगीजी महाराज धाम लौट गए किन्तु उन्होंने वचन दिया, 'मैं सांकरी आऊँगा और आपको सुख दूँगा ।' सोमाभाई पटेल जिन्होंने योगीजी महाराज के शब्दों को हृदय में संचित कर लिया था ने प्रमुखस्वामी (शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी) को मूर्ति स्थापना के लिए निमंत्रण दिया । जब प्रमुखस्वामी सांकरी पधारे, तो वहाँ के हरिभक्तों को ऐसा लगा जैसे स्वयं योगीजी महाराज ही प्रमुखस्वामी के रूप में उनके नगर में पधारे हैं । संवत् २०२७ (सन् १९७१) ज्येष्ठ शुक्ला दसवीं को अक्षरपुरुषोत्तम महाराज और लक्ष्मीनारायण देव की संगमरमर (आरस) की प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा वैदिक रीति के साथ सम्पन्न हुई ।

प्रमुखस्वामी महाराज ने इसके अलावा भव्य ९ शिखरबद्ध मन्दिर स्थापित कर दिये हैं : जैसे कि मुंबई, मेहसाना, लन्दन, सुरेन्द्रनगर, सूरत, नडियाद, राजकोट, मेहलाव और नाईरोबी ।

हमारे यहाँ मंदिरों के दो प्रकार माने गये हैं, १. शिखरबद्ध और २. हरिमंदिर । इसमें ऊपर निर्दिष्ट शिखरबद्ध मंदिर हैं । शिखरबद्ध मंदिरों में पंच धातु की एवं संगमरमर की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं । जब कि हरिमंदिरों में चित्रप्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की जाती हैं । हरिमंदिर तो गाँव-गाँव होते हैं । अमरिका, अफ्रिका, न्यूझीलेन्ड, ओस्ट्रेलिया, फ्रान्स, युरोप, ईंग्लेन्ड आदि केन्द्रों में हरिमंदिर हैं । शिखरबद्ध मंदिर ज्यादातर भारत में करीब १६

की संख्या में हैं । विदेश में केवल लंदन एवं नाईरोबी में शिखरबद्ध मंदिर हैं । इन शिखरबद्ध मंदिरों में पाँच समय की आरतियाँ होती हैं एवं ऋतु अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के श्रृंगार और थालभोग किये जाते हैं ।

११. गुरुभजनस्तोत्रम्

भवसंभवभीतिभेदनं सुखसंपत्करुणानिकेतनम् ।
व्रतदानतपःक्रियाफलं सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ १॥

संसार में जन्म-मृत्यु के भय को मिटानेवाले, सुख सम्पत्ति और करुणा के मूल धाम, व्रत, दान, तप आदि क्रिया के फलस्वरूप सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ ॥ १ ॥

करुणामय-चारुलोचनं शरणायात-जनार्तिमोचनम् ।
पतितोद्धरणाय तत्परं सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ २ ॥

जिनके करुणामय सुन्दर नेत्र हैं, शरण में आने वाले के जो दुःख दूर करते हैं, जो सदा पतितों का उद्धार करने के लिए तत्पर रहते हैं उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ ॥ २ ॥

निजतत्त्वपथावबोधनं जनतायाः स्वत एव दुर्गमम् ।
इति चिन्त्य गृहीतविग्रहं सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ ३ ॥

आमजन को, जिनको स्वयं समझने के लिए कठिनाई है वह अपने स्वरूप के ज्ञान का, सरल भाषा में बोध कराने के हेतु, जिन्होंने अपनी इच्छा से नरदेह धारण की है उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ ॥ ३ ॥

विधिशंभुमुखैरनिग्रहं भवपाथोधिपरिभ्रमाकुलम् ।
अपिधार्य मनो नरप्रभं सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ ४ ॥

मैं उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ जो मनुष्यदेह में विचरण करते हैं, जिनके प्रभाव से ब्रह्मा-शिव आदि जैसे देव भी भवसागर में चक्कर लगा रहे हैं ऐसे मन को जिन्होंने नियंत्रित कर लिया है ॥ ४ ॥

निजपादपयोजकीर्तनं सततं स्याद्भवजीवगोचरम् ।
इति यः कुरुते क्रतूत्सवं सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ ५ ॥

मैं उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ जिसने महोत्सवों को मनाया और महायज्ञों का आयोजन किया जिससे जीव निरन्तर उनकी महिमा

का गान कर सकें ॥ ५ ॥

बहिरिक्षणलोकमानुषं निजदत्ताम्बकदर्शिनां हरिम् ।
भजनीयपदं जगद्गुरुं सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ ६ ॥

मैं उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ जिनके चरण-कमल भजने योग्य हैं, जो चर्मचक्षु से (श्रीहरि) को निहारते हैं उन्हें मनुष्य रूप में और जो दिव्यदृष्टि प्राप्त पुरुष को परमात्मा के रूप में अपने दर्शन देने की कृपा करते हैं ॥ ६ ॥

शरणागतपापपर्वतं गणयित्वा न तदीयसद्गुणम् ।
अणुमप्यतुलं हि मन्यते सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ ७ ॥

मैं उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ जो हमारे अणु जितने गुण को भी महान मानते हैं, शरण में आनेवाले के पर्वत जैसे पापों को भी याद नहीं रखते हैं ॥ ७ ॥

भववारिधिमोक्षसाधनं गुरुराजप्रकटस्वसंगमम् ।
प्रकटीकृतवान् कृपावशः सहजानन्दगुरुं भजे सदा ॥ ८ ॥

मैं उन सहजानन्द गुरु को निरन्तर भजता हूँ जो कृपा के वश होकर प्रगट हुए हैं । और उन गुरुदेव ने प्रगट होकर अपना समागम सहज कर दिया है, और वह समागम भवसागर से पार उतार कर मोक्ष देनेवाला है ॥ ८ ॥

भगवन् कृपया त्वया कृतं जनतायामुपकारमीदृशम् ।
क्षमते प्रतिकर्तुमत्र कः कुरुते दीनजनस्ततोञ्जलिम् ॥ ९ ॥

हे भगवान ! आप मनुष्यमात्र का परम कल्याण करने के लिए कृपा करके पृथ्वी लोक पर पधारे हैं । इस पृथ्वी पर कोई भी ऐसा नहीं है जो इसका प्रतिकार दे सके । अतः मैं दीनानाथ भट्ट हाथ जोड़कर आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

१२. लक्ष्मीचंद सेठ

एकबार श्रीजीमहाराज कारियाणी में संतों और हरिभक्तों की सभा में कथावार्ता कर रहे थे । उस समय श्रीजीमहाराज ने एक आठ-दस वर्ष के छोटे से बालक की ओर संकेत करते हुए रामानुजानन्द स्वामी और छोटे

गोपालानन्द स्वामी से पूछा, 'क्या तुम इन्हें जानते हो ?'

संतों ने उत्तर दिया, 'यह अमुक भक्त का पुत्र है ।'

श्रीजीमहाराज ने पुनः पूछा, 'मैं इनका इस जन्म का परिचय नहीं जानना चाहता । क्या तुम यह बता सकते हो कि ये पूर्वजन्म में कौन थे ? क्या आप पहले कभी इनसे मिले हो ?'

संतों ने उत्तर दिया, 'नहीं, महाराज ।'

श्रीजीमहाराज ने कहा, 'यह बालक वृन्दावन के लक्ष्मीचंद सेठ है । आपकी एवं हमारी बहुत सेवा की थी । उसके पुण्यप्रताप से आज हमारा मिलन हुआ है । ये बहुत पुण्यात्मा पुरुष हैं ।'

ये लक्ष्मीचंद सेठ बहुत धनाढ्य और बड़े दानी था भगवान के महान भक्त थे । इन्होंने वृन्दावन में श्रीरंगजी का सुन्दर मन्दिर बनवाया था और उसके चौक में एक ऊँचा खम्बा खड़ा किया था । उस खम्बे पर २२ मन सोने की परत चढाई थी । इन्होंने भगवान को प्रसन्न करने के लिए इतना सबकुछ किया था, और दानी होने का अहंकार त्याग कर सुबह से दोपहर तक वे भिक्षुकों को अन्नदान करते थे । यह सेवा, यह कीर्ति और यश के लिए नहीं करते थे परन्तु अपने जीवन के कल्याण के लिए करते थे ।

एकबार श्रीजीमहाराज के एक संत सुखानन्द स्वामी विचरण करते हुए वृन्दावन पहुँचे । सेठ सदाव्रत बाँट रहे थे । सुखानन्द स्वामी एक कोने में खड़े हो गए । जब सब अन्न ले चुके तब संत सेठ के पास आए और अन्न लिया ।

सेठ ने संत से पूछा, 'इतनी देर से तुम अकेले दूर क्यों खड़े थे ?'

संत ने उत्तर दिया, 'मैं स्वामिनारायण का संत हूँ, हम सदा स्त्री और धन से दूर रहते हैं । यदि स्त्री से हम छु जाएँ तो हमें उपवास करना पड़ता है इसलिए मैं अकेला इतनी देर से दूर खड़ा था ।' यह सुनकर सेठ को बहुत प्रसन्नता हुई ।

उस समय दो संत, रामानुजानन्द स्वामी और कनिष्ठ गोपालानन्द स्वामी वहाँ भिक्षा लेने आए । उनकी सुखानन्द स्वामी से बातचीत हुई । सुखानन्द स्वामी ने भगवान स्वामिनारायण के प्रगट होने तथा उनके अपने ऐश्वर्य-सामर्थ्य की बातें कहीं ।

सेठ भी इन बातों को सुन रहे थे । सेठ को अनिन्द्रा का रोग था, किन्तु जब भी वे भगवान स्वामिनारायण के बारे में सोचते उन्हें गहरी नींद आती । धीरे धीरे उनके हृदय में भगवान स्वामिनारायण के प्रति प्रेम और आदर उत्पन्न हो गया और सेठ ने सोचा कि वे अवश्य ही दिव्य पुरुष होने चाहिए ।

उसी अवधि में सुखानन्द स्वामी देह छोड़कर धाम चले गए । किन्तु सेठ ने मन में भगवान स्वामिनारायण के दर्शन की लालसा तीव्र हो उठी । सेठ रामानुजानन्द स्वामी को स्वर्ण स्तंभ मन्दिर सौंपने को तत्पर थे । किन्तु

उन्होंने विनम्रता से मना कर दिया, 'हम तो जीव के कल्याण के लिए प्रगट भगवान की शोध में निकले हैं । इसलिए इस गद्दी का हम क्या करेंगे ?' इन शब्दों के साथ वे दोनों संत भगवान स्वामिनारायण के दर्शन करने के लिए काठियावाड़ की ओर चल दिए ।

लक्ष्मीचंद सेठ ने उनसे कहा, 'कृपया यह स्वर्ण ले जाओ और यह मेरी ओर से भगवान स्वामिनारायण को अर्पित कर देना ।'

संतों ने कहा, 'यदि हम अपने पास सोना रखेंगे तो रास्ते में लूटे जाने और मारे जाने का भय लगेगा, इसलिए हमें नहीं चाहिए ।'

अंत में लक्ष्मीचंद सेठ ने उत्तम इत्र की शीशी देते हुए कहा, 'इत्रकी इस शीशी को लो और मेरी ओर से भगवान स्वामिनारायण को अर्पित कर देना और मेरी ओर से उन्हें अपने संतों सहित वृन्दावन पधारने का निमंत्रण देना । सारा व्यय भार उठाने के लिए मैं तैयार हूँ और अपने समस्त साधनों से उनकी उत्तम सेवा करूँगा ।'

इस संदेश को लेकर वे संत पैदल ही गढ़डा पहुँचे । श्रीजीमहाराज के दर्शन से अतिशय प्रभावित हुए । उन्हें उनमें पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन हुए और उन्होंने महाराज से भागवती दीक्षा ग्रहण की । उन्होंने महाराज को लक्ष्मीचंद सेठ की दी हुई इत्र की शीशी दी और संदेश भी दिया । उन्होंने बताया भी कि वे वास्तव में मुमुक्षु हैं और उनकी आपके दर्शन करने की तीव्र इच्छा है और उन्होंने आपको आपके संघ के साथ आतिथ्य का निमंत्रण दिया है ।

श्रीजीमहाराज ने वह इत्र की शीशी ले ली और वहाँ उपस्थित सभी संतों और हरिभक्तों की नाक पर इत्र का तिलक किया और कहा, 'तुम्हारी नाक रहेगी और दूसरे की नहीं रहेगी ।' (इसका अर्थ था कि तुम्हारा कभी पराभव नहीं होगा) उन्होंने कहा, 'लक्ष्मीचंद सेठ इस जन्म में हमारे दर्शन नहीं कर सकते । ऐसा पुण्य उन्होंने अर्जित नहीं किया है । किन्तु इस सेवा के कारण उनका अगला जन्म सत्संगी के यहाँ होगा और उस समय हमारे दर्शन करेंगे ।'

वृन्दावन में, लक्ष्मीचंद सेठ ने तीन-चार महीने तक बड़ी आतुरता से भगवान स्वामिनारायण की प्रतीक्षा की । उनकी आतुरता बढ़ गई तब उन्होंने काठियावाड़ जाकर ही दर्शन करने का निश्चय किया । वे अपने घोड़े पर चढ़े और काठियावाड़ की ओर चल दिये । रास्ते में उनका घोड़ा अचानक

बिदक गया, जिसके कारण लक्ष्मीचंद सेठ नीचे गिरे और मर गये । महाराज की कृपा और संतों की सेवा के पुण्य प्रताप से लक्ष्मीचंद सेठ का जन्म कारियाणी में नथु पटेल के रूप में हुआ और श्रीजीमहाराज का अनन्य भक्त हुआ । नथु पटेल का अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी से सम्पर्क हुआ और उनके समागम से शुद्ध समझ पाई ।

१३. दामोदरभाई

अहमदाबाद के दामोदरभाई पटेल सद्गुरु रामानन्द स्वामी के शिष्य थे । रामानन्द स्वामी के धाम में चले जाने के पश्चात् दामोदरभाई का समागम श्रीजीमहाराज से हुआ । वे श्रीजीमहाराज के अलौकिक प्रताप से प्रभावित हुए और श्रीजीमहाराज के सर्वोपरि होने का उनको पक्का निश्चय हो गया ।

एक समय दामोदरभाई को नथु भट्ट से वादविवाद हुआ । दामोदरभाई श्रीजीमहाराज को सर्वोपरि, सर्व अवतारों के अवतारी, सर्व कारणों के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम कह रहे थे । नथु भट्ट श्रीकृष्ण भगवान को सर्वोपरि कह रहे थे । दोनों श्रीजीमहाराज के पास आए और प्रार्थना करके कहा, 'हे महाराज ! हम दोनों के मध्य एक चर्चा पर विवाद है । कृपया बताइए कि हम दोनों में कौन ठीक है ?'

उस समय श्रीजीमहाराज ने नथु भट्ट को समाधि लगवा दी । उस समाधि में अनन्त भक्तों, अनन्त अवतारों तथा रामानन्द स्वामी सहित सभी को महाराज की सेवा करते देखा । इससे नथु भट्ट को उनकी सर्वोपरिता का विश्वास हो गया । महाराज ने नथु भट्ट को समाधि से जाग्रत कर दिया । समाधि से जाग्रत होने पर उन्होंने दामोदरभाई को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया और उसने महाराज से कहा, 'हे महाराज ! यदि दामोदर ने आपके सर्वोपरि स्वरूप की बात न कही होती तो मेरा कल्याण न होता, कल्याण में फेर पड़ जाता ।'

एकबार बातचीत के मध्य दामोदरभाई का एक संत के साथ विवाद हो गया । उस समय संत ने दामोदरभाई को थप्पड़ मार दिया । किन्तु दामोदरभाई एक शब्द भी न बोले और न संत पर क्रोधित हुए । जब श्रीजीमहाराज को इस बात का पता चला, उन्होंने संत को फटकारा । उस समय दामोदरभाई भी वहीं बैठे हुए थे वे बीच में ही बोले, 'हे महाराज !

साधु तो हमारे पिता हैं । किसी समय तो पिता भी पुत्र को थप्पड़ मार देते हैं इसलिए कोई गलती नहीं हुई है ।' यह सुनकर श्रीजीमहाराज ने कहा, 'पुत्र भी धन्य और पिता भी धन्य !' इस प्रकार से दामोदरभाई में श्रीजीमहाराज के संतों के प्रति अतिशय आत्मबुद्धि थी ।

दामोदरभाई श्रीजीमहाराज के सम्पर्क में आने से अनन्य सेवाभावी भक्त बन गए । सांसारिक सर्व पदार्थों से उनकी अरुचि हो गई और भोग के समस्त पदार्थों से वैराग्य हो गया । वे अपना अधिकांश समय श्रीजीमहाराज की सेवा में बिताते थे । दामोदरभाई अपनी गृहस्थी चलाने में बहुत कठिनाई का अनुभव कर रहे थे । ऐसे समय में श्रीजीमहाराज ने उनके प्रति केवल प्रेमभाव के कारण अपने अंग पर धारण किए हुए मूल्यवान आभूषणों को उतारकर दामोदरभाई को दे दिए ।

जब श्रीजीमहाराज दंढाव्य क्षेत्र में विचरण कर रहे थे तब दामोदरभाई श्रीजीमहाराज की निजी सेवा में रहते थे । वे महाराज के मन को समझ गए थे और तदनुसार ही सेवा करते थे । एकबार महाराज सभा को सम्बोधित कर रहे थे । महाराज को खांसी का दौरा उठने लगा । थूक उनके गले में अटक

गया । महाराज थूकने के लिए उठने लगे किन्तु दामोदरभाई ने तुरन्त अपनी पगड़ी आगे धर दी । अपनी मूल्यवान वस्तु को भी श्रीजीमहाराज की प्रसन्नता के सामने उन्होंने तुच्छ समझा था ।

श्रीजीमहाराज के धाम चले जाने के पश्चात् दामोदरभाई की पत्नी भी धाम सिधार गई । दामोदरभाई ने दूसरा विवाह कर लिया । एकबार दामोदरभाई नरनारायण देव के दर्शन करके रामप्रतापभाई के दर्शन करने गए । रामप्रतापभाई अपने स्थान से उठ खड़े हुए, अपने हाथ में एक छड़ी ली और क्रोध में कहा, 'जब तुम वर्तमान धर कर सत्संगी बने तब तुमने सौगंध खाई थी कि अपनी पत्नी को छोड़कर सभी स्त्रियों को माता-बहन और पुत्री के समान समझोगे । अब तुमने दूसरा विवाह कर लिया । बताओ, इस स्त्री को तुम किस लोक से लाए ? यहाँ से निकल जाओ । अपनी सुरत मुझे कभी मत दिखाना और कभी मेरे पास मत आना ।'

इस प्रकार दामोदरभाई का हमेशा तिरस्कार, अनादर हुआ किन्तु सत्संग के प्रति उनके मन में कभी भी अभाव नहीं आया । वे हमेशा की तरह नरनारायण देव और रामप्रतापभाई के दर्शन करने नियमितरूप से जाते रहे । वे श्रीजीमहाराज के प्रति अनन्य निष्ठावान, निर्मानी भक्त थे ।*

१४. सत्संग

आत्यंतिक कल्याण अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त हो देह के रहते हुए अक्षरधाम के दिव्य आनन्द का अनुभव करने के लिए एकमात्र साधन सत्संग है, सत्संग की महिमा अपार है । अष्टांग योग, सांख्यविचार, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, तीर्थ, व्रत, यज्ञ-यागादि साधनों से भगवान को प्रसन्न करना कठिन है किन्तु सत्संग के द्वारा वश में हो जाते हैं । सर्व साधनों का फलरूप सत्संग है ।

वसिष्ठ और विश्वामित्र महर्षियों के संवाद की बात शास्त्र में प्रसिद्ध है । विश्वामित्र ने कहा कि साठ हज़ार वर्ष के तप का हमारा बल अधिक है । वसिष्ठजी ने कहा कि तप से सत्संग महान बलवाला है । दोनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पास अपने वाद का निर्णय कराने के लिए गए । किन्तु उन सभी

* आज भी दामोदरभाई का मकान अहमदाबाद में नरनारायण के मन्दिर के पीछे है ।

महादेवों ने सोचा कि एक की बात को सत्य कहेंगे तो दूसरा बुरा मानेगा, शाप भी दे सकते हैं । इस डर से उन्होंने कूटनीतिपूर्वक उन महर्षियों को शेषजी (शेषनाग) के पास भेज दिया । शेषजी अपने सहस्रफनों पर पृथ्वी का भार उठाए हुए है ऐसा रूपक पुराणों में है । उन्होंने शेषजी को समस्या बताई ।

शेषजी ने कहा, 'मेरे सिर पर पृथ्वी का भार है तुम अपने तप के प्रभाव से मेरा भार हल्का करो तो न्याय कर सकूँ ।' विश्वामित्र ने अपने तप बल से संकल्प किया परन्तु पृथ्वी हल्की नहीं हुई, न ऊँची उठी । वसिष्ठजी ने तब थोड़े सत्संग के फल के बल से संकल्प किया, पृथ्वी तुरन्त एक हाथ ऊँची हो गई । शेषजी ने कहा, 'अब हमारे कहने की कोई आवश्यकता नहीं है, न्याय हो गया ।' इससे सत्संग की महिमा अपने आप स्पष्ट होती है ।

भागवत में भी अनेक आख्यान हैं । वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्व, बलिराजा, बाणासुर, विभीषण, सुग्रीव, कुब्जा, गजेन्द्र, जटायु पक्षी, तुलाधार वैश्य, व्रज की गोपियाँ, और अनेक ऋषि मुनियों की पत्नियाँ इन सभी को सत्संग से भगवान मिले । श्रीजीमहाराज के समय में काठी, कोली, कुनबी आदि जिन्हें शास्त्रों का ज्ञान नहीं था, तप, व्रत और दान आदि का बल जिनके पास नहीं था उन्होंने आत्यंतिक कल्याण सत्संग से किया । लीमली के सगराम वाघरी, जेतलपुर की लक्ष्मी, भाल प्रदेश की मुसलमान बाई, जोबनपगी, मानसिंह राजा आदि का सम्पूर्ण जीवन सत्संग के प्रभाव से परिवर्तित हो गया ।

सत्संग क्या है ? नैतिक या सदाचारी व्यक्तियों के साथ समागम इतना मात्र सत्संग का अर्थ नहीं है । इससे कहीं अधिक है । सत्संग का अर्थ है :

सच्छब्देन परब्रह्म साधवश्च तदाश्रयाः ।
प्रोक्तस्तदीयो धर्मश्च शास्त्रमेतत् त्रिकाश्रयम् ॥

सत्संग : सत् शब्द का अर्थ है (१) परब्रह्म, पुरुषोत्तमनारायण सदा दिव्य साकार मूर्ति, प्रत्यक्ष भगवान श्रीजीमहाराज, (२) धर्म, ज्ञान, वैराग्य, माहात्म्य सहित भक्ति इन चार गुणों से युक्त परम एकान्तिक साधु (३) भगवान और भगवान के परम एकान्तिक संत द्वारा प्रतिवादित सदाचाररूपी धर्म (४) इन तीनों की महिमा समझानेवाला शास्त्र हो तो वह सत् शास्त्र । इन चार का संग करना सत्संग कहलाता है । (सत्संगिजीवन ३-२२-४)

भगवान का परम एकान्तिक संत, जिनके मन की वृत्तियाँ श्रीजीमहाराज

के साथ अखंड जुड़ी हुई हैं और जिनमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के चारों गुण परिपूर्ण हैं और जो उनकी शरण में आते हैं उनके विषय में उनका उसी तरह हित चाहते हैं कि 'यह मेरा सत्संगी है, इसको भी भगवान के साथ ऐक्य होना चाहिए और उसकी जगत की वासना इच्छा दूर होनी चाहिए' ऐसे संत के साथ मन, कर्म, वाणी से संग करना सत्संग कहलाता है । वे शुद्ध पवित्र हैं यह सोचना और अपनी क्रियाओं द्वारा उनकी सेवा करना और वाणी से उनके गुण गाना सत्संग कहलाता है । ऐसे संत के वचन में शास्त्रों की आज्ञारूपी सत्संग सहज ही आ जाता है ।

कोई कितना भी उपाय करे परन्तु संतसमागमरूपी सत्संग के बिना वासना-इच्छा नष्ट नहीं होती । यही कारण है कि शास्त्र सत्संग को बहुत महत्त्व देते हैं और सत्संग को कल्पतरु या चिंतामणि से भी अधिक प्रभावी मानते हैं । चिंतामणि तो केवल हमारी दरिद्रता को दूर कर सकती है, किन्तु जन्म-मरण के चक्र से मुक्त नहीं कर सकती । इसलिए सत्संग आवश्यक है । ऐसे दुर्लभ सत्संग की प्राप्ति का फल क्या है ? श्रीजीमहाराज ने कहा है : 'परोक्षदेव के सम्बन्ध में जीव को जो प्रतीति होती है, वैसी अनुभूति यदि प्रत्यक्ष गुरुरूप हरि में (प्रगट सत्पुरुष के सत्संग में) हो जाय तो प्राप्त होनेवाले समस्त अर्थ उसको प्राप्त हो जाते हैं । जो ऐसा सन्त-समागम आपको प्राप्त हुआ है तब यह समझना चाहिये कि देहत्याग करके जो भगवान की प्राप्ति करनी है, वे भगवान आज प्रत्यक्ष प्राप्त हुए हैं । इसलिये, जिसको परमपद कहते हैं, मोक्ष कहते हैं वह तो इस जीवन में आज भी सदेह प्राप्त हो गया है ।' (वच. ग. अं. २)

सत्संगी

जैसा कि पहले कहा गया है कि सत्संगीरूपी साधन को मुख्य रखकर श्रीजीमहाराज ने इस लोक में स्वामिनारायण सम्प्रदाय की स्थापना की है । इसलिए तो भगवान स्वामिनारायण के भक्तों-सेवकों को सब सत्संगी कहते हैं । जो स्वामिनारायण भगवान का आश्रय लेकर वर्तमान धारण करे वह सत्संगी कहलाता है । श्रीजीमहाराज ने शिक्षापत्री में इन वर्तमानों को इस तरह पंचवर्तमान लिखे हैं : मेरे आश्रित (१) दारू (मादक द्रव्यों) का सेवन न करें (२) चोरी न करें (३) मांस न खाएँ (४) व्यभिचार न करें (ब्रह्मचर्य

का पालन करें) और (५) धर्मभ्रष्ट न हों और न दूसरों को धर्मभ्रष्ट करें ।

वचनामृत में श्रीजीमहाराज ने स्पष्ट किया है कि सत्संगी किसे कहना चाहिए ? और पक्का सत्संगी कौन होता है ? जैसी अपनी देह के प्रति आत्मबुद्धि है, सम्बधियों-प्रियजनों के प्रति ममत्वबुद्धि है, जिनकी पवित्र नदियों के प्रति तीर्थबुद्धि है, भगवान की मूर्ति के प्रति पूज्यबुद्धि है, ये चार प्रकार की बुद्धि - आत्मबुद्धि, ममत्वबुद्धि, तीर्थबुद्धि एवं पूज्यबुद्धि जिसकी एकान्तिक संत के प्रति ऐसी हुई है वह सच्चा सत्संगी है । उसने अष्टांग योग, तप, व्रत, दानादिक साधना से भी सत्संग अधिक श्रेष्ठ माना है ।

जिसने इन्द्रियों के विषयों से अपने मन को पूर्णत: अलग कर लिया है और उसे परमात्मा या भगवान के संतों से संयुक्त कर दिया है वह सत्संगी कहलाता है । सत्यस्वरूप आत्मा तथा सत्यस्वरूप भगवान अर्थात् परमात्मा का जिसे संग हो गया है वह सत्संगी है । आगे महाराज कहते हैं जिसके नियम, निश्चय और पक्ष ये तीन परिपूर्ण हैं वह पक्का सत्संगी है ।

जिसका सत्संग दृढ़ हो गया है वह यदि बाद में उस पर चाहे कितने भी दु:ख आ पड़ें, या सत्संग में अपमान हो तो भी सत्संग से मन नहीं मोड़ते । जैसे भगतजी महाराज और शास्त्रीजी महाराज को सत्संग में बहुत अपमानित किया गया था । श्रीजीमहाराज कहते हैं कि केवल ऐसे व्यक्ति ही सच्चे दृढ़ सत्संगी वैष्णव हैं । वे ही हमारे सम्बंधी हैं । वे ही मेरे समाज-जाति रूप हैं और मैं मानव देह में ऐसे वैष्णवों के साथ रहना चाहता हूँ ।

कुसंग

एक समय वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु का मिलन हुआ । वल्लभाचार्य ने सत्संग की अद्‌भुत महिमा कही, फिर उन्होंने चैतन्य महाप्रभु से कुसंग किसे कहते हैं यह पूछा । चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, 'गाय के सींग की नोक ऊपर सरसों का दाना स्थिर रहे उतनी देर भी यदि कोई कुसंग करे तो उसके जन्म जन्म के संचित पुण्य नष्ट हो जाते हैं ।'

अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी ने अपनी बातों में कहा है कि पापी को छूकर जो पवन आता हो यदि वह हम से छू जाए तो साठ हज़ार वर्षों के संचित पुण्य तत्काल नष्ट हो जाते हैं । कुसंग का ऐसा प्रभाव है । जिस प्रकार अमृत जैसे दूध में साँप की लार की एक बूँद गिर जाए तो वह भी

विष बन जाता है उसी तरह महाराज कहते हैं कि कुसंग कि प्राप्ति होने से या कुसंगी के वचनों में श्रद्धा रखने से वैराग्य, विवेक, स्वधर्म आदि समस्त गुणों का नाश हो जाता है और ऐसे संग से काम, क्रोध, लोभ आदि विकार आ जाते हैं । अत: भगवान के भक्त को चाहिए कि वह किसी समय कुसंग तो करे ही नहीं ।

कुसंग की व्याख्या करते हुए श्रीजीमहाराज ने कहा है कि सब कुसंगों से अधिक कुसंग तो यह है, जिसमें परमेश्वर की भक्ति नहीं है और जिन्हें परमात्मा के प्रति कोई आदरभाव नहीं है, विश्वास नहीं है । ऐसे दो मत हैं एक तो नास्तिक का है और दूसरा शुष्क वेदान्ती । जो नास्तिक है वह तो किसी अनादि सर्वोपरि परमात्मा को मानता ही नहीं । वह तो कर्म करने में कल्याण मानता है । और जो शुष्क वेदान्ती है वह मानता है कि मैं ब्रह्म हूँ । ऐसा मानकर वह पाप कर्म करने से नहीं हिचकता । ऐसे व्यक्तियों का संग कुसंग है ।

शुष्क वेदान्ती, जो वास्तव में अज्ञानी है, उसका संग करने से कोई बड़ा पाप नहीं है । इसलिए जिन्हें परम कल्याण की कामना है उन्हें नास्तिक और शुष्क वेदान्ती से संग नहीं करना चाहिए ।

'स्वामी की बातें' नाम के ग्रन्थ में तीन प्रकार के कुसंग बताए गए हैं । (१) बाहरी कुसंग (२) आंतरिक कुसंग और (३) सत्संग में कुसंग । अधर्म का आचरण करनेवाला अधर्मी से तथा भगवान और संत की निन्दा करनेवाले जैसे विमुख मनुष्य से जो संग करे यह बाहरी कुसंग । मन तथा इन्द्रियों के पंचविषय के मार्ग पर जो चले और भगवान और संत के प्रति मनुष्यभाव से देखे यह आन्तरिक कुसंग । जो श्रीजीमहाराज को अन्य अवतारों के समान कहे, माने, एकान्तिक को सामान्य संत के समान कहे, भगवान और संत में दोष देखे और आज्ञा में गौणपन-कमी निकालना यह सत्संग का कुसंग है । इन तीनों प्रकार के कुसंगों का त्याग करो ।

१५. विष्णुदास

विष्णुदास ने सीधा-सामग्री की जाँचकर श्रीजीमहाराज से कहा, 'महाराज ! सीधा (खाद्य सामग्री) पूरा नहीं पडेगा - यानि कम है ।'

स्वरूपानन्द स्वामी जो वहाँ उपस्थित थे उन्होंने कहा, 'यदि खाद्य सामग्री यथेष्ठ नहीं है तो लक्ष्मीजी की निन्दा होगी । हम क्यों उसकी चिंता करें ?'

श्रीजीमहाराज इन दो भक्तों की अपने प्रति निष्ठाभक्ति देख बहुत प्रसन्न हुए और तुरन्त ही तेल, घी, गुड़, गेहूँ और चावल आदि के कोठियों-भांडों को अपनी छड़ी से स्पर्श किया । सभी पात्र विभिन्न वस्तुओं से पूरे भर गए ।

महाराज डभाण गाँव के इस भक्तराज के वश में थे । महाराज ने डभाण में जितने भी महायज्ञ किए वे सब विष्णुदास पटेल के नाम से किए थे ।

विष्णुदास श्रीजीमहाराज के लाडले और एकान्तिक भक्त थे । श्रीजीमहाराज की कृपादृष्टि के कारण उन्हें निर्वाण स्थिति प्राप्त थी । घर बैठे बैठे ही वे श्रीजीमहाराज को - कहीं भी विचरण करते हों - देख सकते थे और अपने घर बैठे बैठे वे दूसरे हरिभक्तों से कहते, 'आज महाराज अमुक गाँव में बिराजमान हैं, वहाँ यह लीला कर रहे हैं ।' अपने इष्टदेव के प्रति दिव्यदृष्टि रखनेवाला यह भक्तराज अखंड ज्ञानसमाधि में रहते थे ।

श्रीजीमहाराज डभाण के आम्रवृक्ष की बहुत प्रशंसा करते थे । वे इस विशेष वृक्ष के आमों के बहुत शौकीन थे । इसलिए, विष्णुदास श्रीजीमहाराज संतों और हरिभक्तों को खिलाने के लिए डभाणी आमों की गाड़ी (बैलगाड़ी) भरकर गढ़डा ले जाते थे । श्रीजीमहाराज विष्णुदास की ऐसी श्रद्धा-भक्ति देखकर दोनों हाथों को उनके मस्तक पर रखकर आशीर्वाद देते और उनकी छाती पर चरणारविन्द की छाप लगाते । श्रीजीमहाराज स्वयं जिमते और संतों और हरिभक्तों को स्वयं आमरस और रोटी परोसते ।

यह कोई आश्चर्य नहीं है कि सभी महाराज के दिव्य चरित्र देखकर सहज ही अहोभाव प्रकट करे किन्तु उनकी मानवलीला की दुर्बलताओं असमर्थताओं को देखकर अखंड दिव्यभाव बना रहे यह बहुत कठिन है । विष्णुदास को विश्वास था, 'सदा दिव्य साकार मूर्ति सर्व समर्थ गुरु श्रीजीमहाराज अक्षरधाम में विराजते हैं वे ही श्रीजीमहाराज अपने ऐश्वर्य, प्रताप, सामर्थ्य सहित मुझे आज प्रत्यक्ष मिले हैं ।'

इस तरह उन्हें प्रत्यक्ष श्रीजीमहाराज के स्वरूप की पूर्ण समझ एवं ज्ञान था । महाराज के अच्छे या बुरे आचरण को देखकर उन्हें महाराज के बारे में कोई संदेह, भ्रम नहीं हुआ । इस कारण श्रीजीमहाराज उन पर अखंड प्रसन्न रहे हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

१६. हिमराज शाह

सुन्दरियाणा गाँव में मोढ जाति का वैश्य हिमराज शाह रहते थे । वैष्णव सम्प्रदाय के अग्रणी हरिभक्त थे और वल्लभ स्वामी का भजन किया करते थे । गोंसाईजी के अनन्य भक्त थे । एकादशी की पुण्यतिथि को गोसाईजी के पास धंधुका अपने गाँव से पैदल ही जाते थे । एकादशी के

दिन वे फलाहार भी नहीं करते थे । उनके तीन पुत्र थे । सबसे बड़े का नाम वनाशा था । वनाशा का सम्बंध सत्संग से हो गया था । वनाशा अपने पिता से भगवान स्वामिनारायण की महिमा की बातें किया करता था । हिमराज शाह उससे कहते, 'स्वामी तो केवल एक हैं और वे हैं वल्लभ स्वामी, मेरे लिए शेष सभी देवतुल्य हैं ।' हिमराजभाई की ऐसी दृढ़ निष्ठा थी ।

एक समय योगमूर्ति गोपालानन्द स्वामी सुन्दरियाणा पधारे । बहुतों ने हिमराजभाई से गोपालानन्द स्वामी के दर्शन करने की बिनती की परन्तु वे नहीं माने । किन्तु हिमराजभाई वैद्यक में भी निष्णात थे । हिमराजभाई परोपकार की भावना से साधु-संतों की सेवा प्रेम से करते । एकबार वनाशा ने एक बहाना किया, उसने अपने पिता से कहा कि गोपालानन्द स्वामी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तनिक आप उनकी नाड़ी देख लीजिए । हिमराजभाई तो संतों के सेवाभावी भक्त थे तो वे तुरंत अपने पुत्र के कहने से मन्दिर में नाड़ी परीक्षा करने पधारे ।

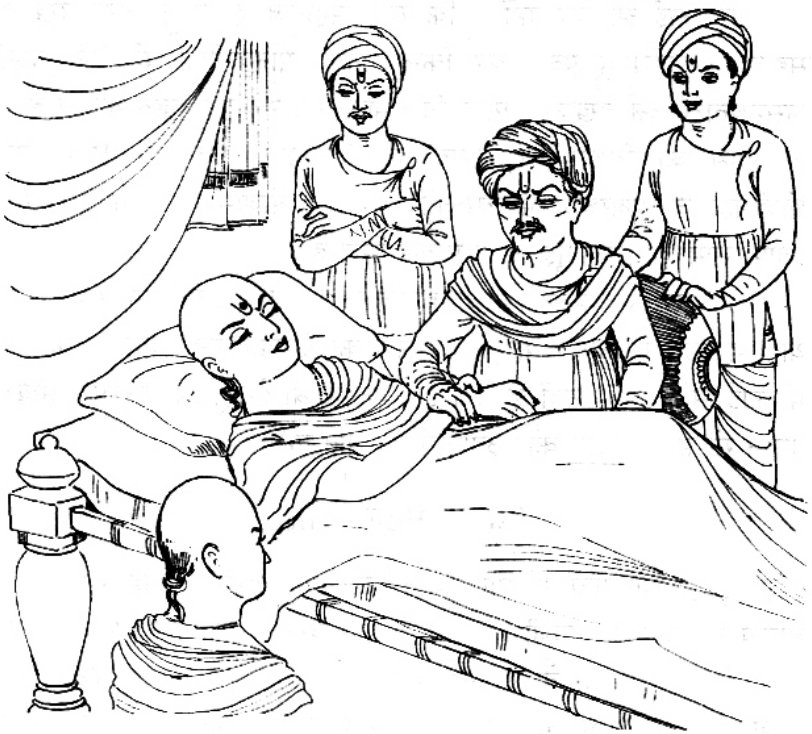

जब हिमराज शाह मन्दिर में पहुँचे तब गोपालानन्द स्वामी चारपाई पर सो रहे थे । हिमराजभाई उनकी चारपाई के निकट बैठ गए । हिमराजभाई ने नाड़ी परीक्षा करने के लिए कलाई पकड़ी, किन्तु उन्हें नाडी धड़कती न मिली । तब उन्होंने स्वामी की नाड़ी पकडने के लिए हाथ, पैर कंठ आदि की जाँच की परन्तु नाड़ी तो कहीं भी नहीं मिली । उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । चारपाई पर लेटे हुए गोपालानन्द स्वामी का शरीर तो तेजस्वी दिखाई दे रहा था, उसमें मृत्यु के कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे । हिमराजभाई अत्यधिक आश्चर्य में डूब गए । यह तो कोई साधारण व्यक्ति नहीं है । ये तो महान योगी होना चाहिए । इन्होंने अवश्य अष्टांग योग सिद्ध किया है । ऐसे विचार उनके मन में आने लगे । ये गोपालानन्द स्वामी, वल्लभ स्वामी जैसे ही सिद्ध हैं । इसका अर्थ है कि इनके गुरु स्वामिनारायण तो भगवान होने चाहिए । श्रद्धा विश्वास जगा और हिमराजभाई का मस्तक सहज ही गोपालानन्द स्वामी के चरणों में झुक गया । गोपालानन्द स्वामी से वर्तमान धारण कर सत्संगी हो गए । हिमराजभाई का अन्त:करण तो पहले ही शुद्ध था । अत: उन्हें निश्चय, निष्ठा में देर न लगी ।

तत्पश्चात् वे प्रगट पुरुषोत्तम श्रीजीमहाराज का भजन करने लगे । उनके सगे सम्बंधी लोग यह परिवर्तन सह नहीं सके । उन्होंने आलोचना करनी प्रारम्भ कर दी । उन्होंने कहा, 'बापदादाओं का धर्म तुमने क्यों छोड़ा ?'

हिमराजभाई ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, 'सहजानन्द स्वामी स्वयं साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के अवतार हैं । जब विठ्ठलनाथ प्रगट हुए थे तब मोढ वैश्यों के बापदादाओं ने अपने बापदादाओं का धर्म छोड़कर विठ्ठलनाथजी का आश्रय लिया था । उसी तरह मैंने भी सहजानन्द स्वामी का आश्रय ले लिया है । मेरा निश्चित मत है कि मैंने कोई भूल नहीं की है ।'

धंधुका से गोसाईजी भी सुन्दरियाणा पधारे और हिमराजभाई को बहुत समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु हिमराजभाई अटल रहे । गोसाईजी ने आठ करंड मिठाई प्रसादी के रूप में भेजी किन्तु हिमराजभाई ने प्रसादी लौटा दी । इससे गोसाईजी बहुत निराश हुए और उन्होंने कहा, 'स्वामिनारायण की वशीकरण विद्या से यह प्रभावित हो गया है । जब समय आए तब इसे जाति से बहिष्कृत कर देना । ऐसा मन में निर्णय करके वे धंधुका लौट आए और

उनके जाति-बिरादरी के लोगों को उनके विरुद्ध भड़काया । उन्होंने कहा, 'हिमराजभाई से कोई भी किसी भी प्रकार का सम्बंध न रखे । कोई भी किसी भी अवसर पर उसके घर अन्न ग्रहण न करे । यदि तुम्हारा कोई भाई भी स्वामिनारायण का सत्संगी हो जाए तो उससे नाता तोड़ लेना ।' जब बहुत सारे लोग गोसाईजी के ध्यान पर यह बात आई कि जोर-जबरदस्ती से किसी को भी किसी एक धर्म का पालन करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । तब गोसाईजी ने उत्तर दिया, 'धर्मभ्रष्ट के ऊपर कोई दया नहीं की जा सकती ।' उन दिनों ही क्या सब समय में ऐसा थोड़ा-बहुत चलता रहता है कि लोग धर्मगुरुओं से डरते हैं, इसलिए उस समय भी लोग चुप हो गए ।

इस तरह से छः वर्ष बीत गए । हिमराजभाई का अंतकाल निकट आ गया । उन्होंने अपने तीनों पुत्रों वनाशा, जेठाशा और पुंजाशा को निकट बुलाया । उन्होंने अपने भतीजे भगाभाई को भी बुलवाया और समझाया, 'यह जीवन और यह संसार तो नाशवान है । अतः धैर्य रखकर, दूसरों से कभी मत डरना, सत्संग कभी मत छोड़ना । वही काम करना जिससे महाराज प्रसन्न हों ।' इतना कहकर महाराज का स्मरण करते हुए हिमराजभाई ने अन्तिम साँस ली । अन्तिम संस्कार जाति की रीति-नीति के अनुसार भोज करने की स्थिति उपस्थित हुई थी ।

हिमराजभाई की लोकप्रियता एवं शाख बहुत ऊँची थी, इसलिए उनके पुत्रों ने उनके प्रशंसकों और मित्रों को अन्तिम संस्कार के विषय में गाँव गाँव पत्र भेजे । उन्होंने मृत्यु भोज का पूरा प्रबंध किया इसलिए घी, खांड, गुड़ आदि अन्न-सामग्री खरीदी । वैश्य जाति इस अवसर की ताक में थी । धंधुका से गोसाईजी का संदेश लाए कि हिमराजभाई के पुत्रों को फिर से वैष्णव सम्प्रदाय में लाओ । हिमराज के पुत्रों को वैष्णव सम्प्रदाय में वापस लाने की लिए जाति के लोग उनके पास गए । एक सेठ ने समझाया, 'यदि तुम सत्संग में जाओगे तो तुम्हें जाति से बाहर निकाल दिया जाएगा । तुम अपने पिता के अन्तिम संस्कार की दुर्गति कर लोगे । अतः स्वामिनारायण कण्ठी-माला तोड़ डालो तो हम सब तुम्हारे यहाँ भोजन करने आएँगे, वरना नहीं ।'

इस पर वनाशा ने कहा, 'मच्छरों के भय से क्या कोई अपनी हवेली

छोड़ देता है ? बिरादरी के डर से स्वामिनारायण को नहीं छोडेंगे और कंठी भी नहीं तोड़ेंगे, चाहे सिर चला जाए ।'

अब जातिवालों के सामने अपनी नाक ऊपर रखने की परेशानी खड़ी हो गई । उन्होंने नया प्रस्ताव रखा, 'अच्छा तो ऐसा करो जब कि उत्तर क्रिया पूरी हो तब तक के लिए कंठी उतारकर रख दो, उसके पश्चात् भले ही पहन लेना ।' उन्होंने कहा ऐसा नहीं हो सकता । अन्त में जातिवालों ने कहा, 'जब तक भोजन समाप्त हो तुम सब भाई छिपे रहना ।' अनेक शर्तें कंठी छुड़ाने के लिए सेठों ने रखीं किन्तु सभी भाई दृढ़ थे । उन्होंने उत्तर दिया, 'पृथ्वी चाहें आज ही रसाताल को चली जाए पर हम सत्संग नहीं छोड़ेंगे । हमने सत्संग किया है कोई चोरी नहीं की है ।'

सेठ लोग धंधुका लौटकर गए और गोसाईजी से उनकी दृढ़ता की सारी बातें बता दीं । प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने प्रत्येक नगर एवं गाँव में पत्र भेजा, 'हिमराज की उत्तरक्रिया में जो लोग भोजन करने जाएँगे उनको जाति से बहिष्कृत कर दिया जाएगा ।'

जब वनाशा को ये सब समाचार मिले तो उन्होंने पुनः अपने परिवार को एकबार टटोला, किन्तु भाइयों के साथ उनके पुत्र आदि भी एक जुट थे । तब वनाशा ने भगाभाई और उनके पुत्र हीराभाई को गढ़पुर भेजा । दोनों भाइयों ने महाराज को संतों सहित सुन्दरियाणा आने का निमंत्रण दिया और कहलाया, 'अब की टेक हमारी, लाज रखो गिरधारी ।'

श्रीजीमहाराज ने कहा, 'इन भाइयों ने हमारे कारण से जाति बहिष्कार का कष्ट उठाया है और दृढ़ टेक रखी है ।'

श्रीजीमहाराज के नेत्रों से, अपने भक्तों की इस निष्ठा को देखकर हर्षाश्रु बह निकले । वे बहुत प्रसन्न हुए और तुरन्त निर्णय किया कि संतों और हरिभक्तों के साथ सुन्दरियाणा जाना है ।

श्रीजीमहाराज अपने संतों और हरिभक्तों के साथ सुन्दरियाणा पधारे । महाराज जेठाशा के घर की मंजिल पर ठहरे और संतों एवं हरिभक्तों के लिए पृथक् प्रबंध किया गया । प्रतिदिन नए-नए व्यंजन बनते थे और तीनों भाई मिलकर प्रेम से महाराज, संत एवं हरिभक्तों को जिमाते थे । महाराज भी संतों को आग्रहपूर्वक परोसते थे । इसके अतिरिक्त महाराज संतों के

साथ रास खेलते थे और कथावार्ता करते थे । इस तरह महाराज ने अनेक प्रकार से लोगों पर अपनी कृपा की वर्षा की ।

वसंत पंचमी के दिन श्रीजीमहाराज ने सभी संतों और हरिभक्तों को रंग डाला और अपने रंगे हुए वस्त्रों को प्रसादी के रूप में तीनों भाइयों को दे दिए । वनाशा को पाघ, पुंजाशा को सुरवाल, जेठाशा को अंगरखा तथा भगाभाई को खेस दिया ।*

इस तरह महाराज वहा पाँच दिन रहे और सबको बहुत सुख दिया । जब महाराज ने वहाँ से लौटने का निर्णय किया तब वनाशा ने महाराज को रुकने की बहुत बिनती करी और कहा, 'महाराज ! बहुत सारी भोजन सामग्री बची है ।' चूँकि वनाशा और परिवार के अन्य सदस्यों ने हृदय से इतने दिन संघ की सेवा की है इसलिए यहाँ अधिक नहीं रुकना चाहिए । महाराज ने बिदा माँगी । वनाशा ने संघ के प्रत्येक हरिभक्त को दो दो लड्डू रास्ते के लिए दिए । श्रीजीमहाराज गढ़डा लौट आए ।

हिमराज शाह तथा उनके पुत्रों ने, अपनी जाति का घोर विरोध सहन करके सिर को होड़ में रख सत्संग को अपने यहाँ रखा । जीवन की चिन्ता नहीं की । श्रीजीमहाराज बहुत प्रसन्न हुए और अपनी अमित कृपा की वर्षा की । हमें भी इन दृढ़ भाइयों की तरह दृढ़ रहना चाहिए ।

१७. वचनामृत

गढड़ा प्रथम प्रकरण-८

भगवान एवं संत की सेवा

संवत् १८७६ में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (रविवार, २७ नवम्बर, १८१९) को श्रीजीमहाराज श्रीगढडा-स्थित दादाखाचर के राजभवन में श्वेत वस्त्र धारण करके विराजमान थे । उनके मुखारविन्द के समक्ष साधुओं तथा देश-देशान्तर के हरिभक्तों की सभा हो रही थी ।

श्रीजीमहाराज बोले कि 'इन्द्रियों की जो क्रियाएँ हैं उन्हें यदि श्रीकृष्ण भगवान तथा उनके भक्त की सेवा में लगाये रखें तो अन्त:करण शुद्ध हो

* आज भी प्रसादी के ये वस्त्र सुंदरियाणा में उनके परिवार में सुरक्षित हैं ।

जाता है तथा जीव के अनन्तकाल के पापों का नाश हो जाता है । जो इन्द्रियों की वृत्तियों को स्त्रियों आदि विषयों में लगाये रखता है, तो उसका अंत:करण भ्रष्ट हो जाता है और कल्याण-मार्ग से उसका पतन हो जाता है । इसलिये शास्त्रों में जिस प्रकार विषयों को भोगने का निर्देश दिया गया है उसी प्रकार उनका उपभोग करना चाहिये, परन्तु शास्त्रों की मर्यादा का उल्लंघन करके उनका उपभोग न किया जाय । साधुओं का संग करना चाहिये और कुसंग का परित्याग कर देना चाहिये । साधुओं का सत्संग करने से देह में रहनेवाली अहंबुद्धि निवृत्त हो जाती है । इसी प्रकार देह के सम्बन्धियों के प्रति ममत्वबुद्धि का भी लोप हो जाता है तथा भगवान के प्रति असाधारण प्रीति हो जाती है और भगवान के सिवा अन्य विषयों में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ।' **॥ इति वचनामृत ॥ ८ ॥**

व्याख्या

वेद व्यासजी ने श्रीमद् भागवत में कहा है कि परम कृपालु श्री हरि ने बुद्धि, इन्द्रियाँ, मन आदि मनुष्य मात्र को इसलिए दिए हैं कि वह अपने जीव के परम कल्याण के लिए नियम में रहकर भोगों का भोग करे । नाक, कान, आँख आदि इन्द्रियों को यदि भगवान की सेवा में जोड़ दिया जाए तो हमारा अंत:करण शुद्ध हो जाएगा ।

नेत्रों का सदुपयोग तभी है या नेत्रों की सार्थकता तभी है जब उनसे मनुष्य संत तथा भगवान की मूर्ति के दर्शन करे, कानों से केवल भगवद्वार्ता सुने, जीभ से भगवान का गुणगान करे और भगवान का प्रसाद ग्रहण करे, नाक से भगवान पर चढ़ाए गए पुष्पों की गंध ले और त्वचा से भगवान की मूर्ति एवं संत का स्पर्श हो । समस्त इन्द्रियों की क्रिया भगवान से सम्बन्धित करें या समस्त इन्द्रियों को भगवान से जोड़ दें, जिससे कि अंत:करण शुद्ध हो जाए और परमात्मा तथा संत की स्मृति अखंड बनी रहे ।

तथापि, इस परम पुरुषार्थ को सिद्ध करने में और हमारे मोक्षमार्ग में जो बाधाएँ आती हैं उन पर हमें चिन्तन-मनन करना परम आवश्यक है । हमारा अहं और ममत्व सभी दु:खों के मूल कारण हैं । देह के साथ जुड़े जो हमारे सम्बन्धी हैं उनके प्रति अहं एवं ममता के भाव हमें परमात्मा से दूर कर देते हैं । मैं और मेरा यह माया है । इन्हें दूर करने के लिए श्रीजीमहाराज ने इस

वचनामृत में उपाय बताया है कि नियम में रहकर विषयों को भोगना । जैसे नदी जब तक मर्यादा में रहती है तब तक सब सुखी रहते हैं । जब नदी में बाढ़ आती है और वह अपने किनारों को यानी अपनी मर्यादा को तोड़कर बहती है तो सबके लिए दु:खरूप बन जाती है । उसी प्रकार शास्त्रों की मर्यादा तोड़कर विषय भोगने से हमारी ही अधोगति नहीं होती किन्तु हम दूसरों को भी हानि पहुँचाते हैं ।

धर्म के नियमों के अनुसार जीवन जीने और अहं-ममत्व की निवृत्ति के लिए हमें साधु का संग करना चाहिए । सच्चे साधु का संग और उनकी सेवा, जीव की मोक्षमार्ग में उन्नति का एकमात्र उपाय है ।

श्रीजीमहाराज कहते हैं कि कुसंग का त्याग करो । जैसे साधु का संग आवश्यक है उसी प्रकार कुसंग का त्याग अत्यंत आवश्यक है । जैसे तनिक सी चिनगारी बारूद के ढेर को उड़ा देती है उसी तरह से क्षणमात्र का कुसंग भी हमारे सारे सत्संग के प्रभाव का नाश कर देता है । क्षणिक कुसंग भी सत्संग को अर्थहीन बना देता है, इसलिए हमें कुसंग से दूर रहना चाहिए । परम एकान्तिक संत जो भगवान का वास्तव में भक्त है उनसे मन, कर्म वचन से जीव यदि समागम करना है तो उसकी अहंता और ममता नष्ट हो जाती है । उसे भगवान का अखंड आनन्द तथा सुख की अनुभूति होती है । भगवान के अतिरिक्त अन्य पदार्थों से वैराग्य हो जाता है । उसे भगवान और भगवान के अतिरिक्त सारा जगत मिथ्या दिखाई देता है ।

गढड़ा प्रथम प्रकरण-१६

विवेकशीलता

संवत् १८७६ में मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थी (सोमवार, ५ दिसम्बर, १८१९) को श्रीजीमहाराज श्रीगढडा-स्थित दादाखाचर के राजभवन में विराजमान थे । उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण किये थे । उनके मुखारविन्द के समक्ष साधुओं तथा देश-देशान्तर के हरिभक्तों की सभा हो रही थी ।

श्रीजीमहाराज बोले कि 'भगवान के जिस भक्त को सत्, असत् का विवेक हो उसे तो अपने में विद्यमान दोषों को जान लेना चाहिये और विचार करके उनका परित्याग कर देना चाहिये । यदि सन्त अथवा किसी सत्संगी में स्वयं को कोई दोष दिखायी पड़ता हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये और

केवल उसके गुण को ही ग्रहण करना चाहिये । परमेश्वर में तो उसे कोई दोष नहीं दिखायी पड़ सकता ।

भगवान और सन्त जो कुछ भी कहें उसे परम सत्य के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये, परन्तु उनके वचनों के विषय में संशय नहीं करना चाहिये । यदि सन्त यह कहें कि 'तुम देह, इन्द्रियों, मन और प्राण से भिन्न हो, सत्य हो और उसका ज्ञान रखनेवाले हो तथा देहादिक सब असत्य है', तो इन वचनों को सत्य समझकर उन सबसे अलग रहना चाहिये और आत्मरूप में व्यवहार करना चाहिये, परन्तु मन के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये । जिनके कारण स्वयं को बन्धन हो और अपने को एकान्तिक धर्म में बाधा पड़ती हो, उन पदार्थों तथा कुसंग को परख लेना चाहिये, उनसे दूर रहना चाहिये और उनके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये । यदि उपयोगी विचार हो तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिये तथा थोथे विचार का परित्याग कर देना चाहिये । जो कोई इस प्रकार का आचरण करता हो उसके सम्बन्ध में यह समझ लेना चाहिये कि उसमें विवेक है ।' **॥ इति वचनामृत ॥ १६ ॥**

व्याख्या

वचनामृत गढ़डा प्रथम प्रकरण १६ में श्रीजीमहाराज ने कहा है कि जो अपना अवगुण देखे वह विवेकी है जो दूसरे का अवगुण देखे वह अविवेकी है, ऐसे समझना चाहिए । जो सत्संग में आगे बढ़ना चाहता है (यानि आध्यात्मिक रीति से उन्नति करना चाहता है) उसे अपने अवगुणों की जानकारी होनी ही चाहिए और उन्हें ज्ञानपूर्वक त्याग देना चाहिए ।

कुछ लोग अपने दोषों को ठीक ठीक जानते हैं, ज्ञान रखते हैं, परन्तु उन्हें छोड़ने का यत्न नहीं करते । जो अपने दोषों को छोड़ने का यत्न करता है वह भी विवेकी है । कारण अपने में गुणों का दर्शन करने से व्यक्ति का अहं बढ़ जाता है । परमात्मा और संत में कोई अवगुण नहीं है किन्तु हमारी परदोष-दर्शन की वृत्ति के कारण से दोष या अवगुण दिखाई देते हैं, भासते हैं । जो विवेकी भक्त हैं वे अपने इष्टदेव में और संत में कभी कोई दोष नहीं देखते ।

इसके अतिरिक्त परमेश्वर और संत जो जो वचन कहते हैं या ज्ञान की बातें करते हैं उन्हें परम सत्य समझे । परमेश्वर और संत के वचनों में यदि

थोड़ी भी शंका जाए तो यह बड़ा अविवेक है । संसारी कार्यों में हम अपने अनुभवी-वृद्ध पुरुषों का विश्वास करते हैं तो इस संसार का कार्य आसान हो जाता है और हम सफल हो जाते हैं । इसी प्रकार मोक्ष के मार्ग में हमें भगवान और संत की प्राप्ति होती है वे हमें आध्यात्मिक पथ का पथ-प्रदर्शन करते हैं उनमें स्वहित की कोई भावना नहीं होती है । वे जो हमें उपदेश देते हैं और हमारी कमियों को बताते हैं उससे अपने जीव का कल्याण ही होता है यानि जीव के कल्याण के लिए ही वे ऐसा करते हैं । वे हमें कभी भी गलत मार्ग पर चलाएँगे नहीं । ऐसा उनमें दृढ़ विश्वास रखकर सत्संग करो तो अविवेक मिट जाएगा, दूर हो जाएगा ।

यह शरीर हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है, वास्तविक स्वरूप होता तो यह सदा ऐसा ही बना रहना चाहिए था किन्तु शरीर और समस्त इन्द्रियाँ तो अग्नि में भस्म होकर अपने तत्त्वों में पुनः विलीन हो जाती हैं । या हम यूँ कहते हैं कि शरीर तो अब राख हो गया । तो अब प्रश्न उठता है कि क्या राख हमारा वास्तविक स्वरूप है सभी यह कहेंगे कि नहीं नहीं, यह हमारा स्वरूप नहीं है । तब हमें कहा गया तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा सच्चा स्वरूप है । विवेकी भक्त सत्पुरुष अथवा शास्त्र के इन वचनों में विश्वास रखकर अपने मन की मनमानी नहीं करता । वह मन की आज्ञा में न चलकर आत्मा की आज्ञा में चलता है, या आत्मा का अनुशासन मानता है । मनमुख न बनो गुरुमुख बनो इस तरह भी संतों ने कहा है । दूसरे शब्दों में, परमात्मा और परमात्मा के संतों की आज्ञा को प्रमाण मानकर वह आचरण करता है, परन्तु वह कभी संबंध पैदा करनेवाले पंचविषयों की ओर आकर्षित नहीं होता । कुसंग को पहचान कर उससे दूर रहता है । जो भी अध्यात्म या परमात्मा के मार्ग में विघ्नरूप विचार होते हैं वह उन्हें त्याग देता है । मोक्षमार्ग में उन्नति करानेवाले, ऊपर उठानेवाले विचार हों तो उन्हें जो ग्रहण करे और यदि गिरानेवाले हों तो उन्हें जो ग्रहण न करे, उसे ही सच्चा विवेक आता है ।

१८. राजबाई

वांकिया गाँव की एक महिला का नाम राजबाई था । वे श्रीजीमहाराज की एकान्तिक भक्त थीं । वे जीवुबाई की मौसी की पुत्री थीं, यानि मौसेरी

बहन थीं । जीवुबाई गढ़पुर में रहती थीं । वहीं राजबाई का आना हुआ था, गढ़पुर में ही राजबाई को महाराज के प्रथम दर्शन हुए थे और प्रथम दर्शन में ही वे श्रीजीमहाराज से प्रभावित हो गई थीं । उन्होंने समझ लिया था कि श्रीजीमहाराज सर्वोपरि भगवान हैं ।

उन्हें विवाह करने की इच्छा नहीं थी । उन्होंने निश्चय कर लिया था कि देह के सुखों का त्याग करके वे अष्टांग ब्रह्मचर्य का अखंड पालन करेंगी और श्रीजीमहाराज की सेवा में रहेंगी ।

उनकी सगाई होनी थी, परन्तु उन्होंने सगाई करवाने से साफ मना कर दिया । तो भी उनकी ससुराल की ओर से चुनरी और नारियल आया । उनकी माँ ने उन्हें छुपाकर कोठरी के ऊपर रख दिया और फिर एक दिन समय पाकर चुनरी राजबाई को दिखाकर कहा, 'राजबाई यह चुनरी देख ।' माँ को तो आशा थी कि बेटी पिघल जाएगी, किन्तु राजबाई देखते ही आगबबूला हो गईं, और कहा, 'आग लगा दे इसे ।' उनका इतना कहना विराम हुआ कि चुनरी में आग लग गई ! तो भी उसके माता-पिता ने उनकी इच्छा के विरुद्ध उनकी सगाई कर दी ।

विवाह के दिन जब बारात राजबाई के घर आई और दूल्हा लग्न मण्डप में आया । राजबाई श्रीजीमहाराज का स्मरण कर बिनती करने लगीं, उन्हें समाधि लग गई और जैसे शव पड़ा हो उनका शरीर अपने आप ही ऐसे पसर गया । लग्न मण्डप में उसके स्थान पर एक दासी को बैठाया । राजबाई के शरीर को रथ में रखकर ससुराल भेज दिया । सारे रास्ते वे भजन गाती रहीं । रात्रि को जब उनका पति कमरे में आया, तब राजबाई श्रीजीमहाराज का ध्यान कर रही थीं । पति महोदय को राजबाई के स्थान पर खाट पर बैठा एक डरावना शेर दिखाई दिया । दूल्हे के मुँह से चीख निकल गई और वह वहाँ से भागा । भागकर वह सीधा अपनी माँ के पास गया और बोला, 'माँ ! मैं इस औरत को नहीं चाहता ।' एक पत्र लिखकर उन्होंने राजबाई को दिया और उन्हें गढ़डा भेज दिया ।

थोड़े दिन बाद महाराज नीम के पेड़ के नीचे बैठे सभा को सम्बोधित कर रहे थे । राजबाई के सम्बंधी वहाँ पधारे और महाराज से विनती करी, 'महाराज ! राजबाई को आदेश दीजिए कि वह अपने घर (ससुराल) लौट

जाए ।' महाराज ने राजबाई को कहलवाया जो कि उस समय सभा में औरतों के मध्य बैठी थीं । महाराज ने कहा है, 'अपने पति के घर लौट जाओ ।'

यह वाक्य सुनते ही राजबाई मूर्छित हो गईं । उनके रोम रोम से रक्त टपकने लगा । लोगों ने सोचा कि राजबाई तो मर जाएगी तो उन्होंने महाराज से विनती की, 'हे महाराज ! राजबाई अतिशय वैराग्यवान हैं । अत: आप ऐसी कृपा करो कि इसका शरीर ठीक हो जाए ?' तुरन्त श्रीजीमहाराज मूर्छित पड़े शरीर के निकट गए और बोले, 'हे राजबाई ! तुम अखंड ब्रह्मचर्य का पालन कर यहीं रहो और हमारी सेवा करो ।' यह सुनकर राजबाई के शरीर में चेतना लौटी । वह बैठ गईं, महाराज के चरणों में फिर पड़ीं । श्रीजीमहाराज ने पूछा, 'तुम्हें मेरी बात बुरी क्यों लगी ?'

राजबाई ने कहा, 'हे महाराज ! क्या मैंने अपने पूर्वजन्मों में पंचविषयों के सुखों को नहीं भोगा ? जितना इस समुद्र में जल है उतना इस जीव ने माता का दूध पीया होगा । बहुत बार जन्म लिए हैं और उन जन्मों में विषयभोग भोगे हैं । अत: इस देह से तो ब्रह्मचर्य का पालन कर आपकी दृढ़ भक्ति करना है - मैंने ऐसा निश्चय किया है । जब आपने पतिगृह जाने

की आज्ञा करी, मैंने सोचा यदि मैं आपकी आज्ञा का पालन न करूँ तो मैं वचनद्रोही कहलाऊँगी । उससे मुझे अतिशय दु:ख हुआ और मूर्छित हो गई । किन्तु जब आपने अखंड ब्रह्मचर्य रखने के लिए कहा इसलिए मैं अतिशय प्रसन्न हो गई हूँ ।'

श्रीजीमहाराज एकबार वासुदेव नारायण कमरे के पूर्व की ओर बरामदे के निकट बैठे थे । गर्मियाँ थीं, संतों ने भूमि पर पानी छिड़क कर फर्श को ठंडा किया था । उस समय राजबाई ने महाराज को रस-रोटी का थाल जिमाया । बाद में दादाखाचर ने महाराज का पूजन किया वस्त्र तथा अलंकार अर्पित किए ।

उस समय श्रीजीमहाराज की इच्छा ओर कृपा से राजबाई को समाधि लगी । अक्षरधाम में दिव्य सिंहासन के ऊपर श्रीजीमहाराज की अतिशय प्रकाशमान दिव्य मूर्ति को विराजमान हुए समाधि में देखा । ब्रह्मा और अन्य देवता श्रीजीमहाराज और राजबाई के ऊपर चन्दन और फूलों की वृष्टि कर रहे हैं । श्रीजीमहाराज ने कहा, 'आज राजबाई ने मीठे आमों का रस जिमाया है इसलिए हमें गर्मी का ताप अनुभव नहीं हो रहा है ।' राजबाई की ऐसी भक्ति थी । राजबाई की ऐसी उत्कृष्ट भक्ति को देखकर उसकी ससुराल पक्ष के पधारे हुए सभी सम्बंधी श्रीजीमहाराज के भक्त हो गए और श्रीजीमहाराज साक्षात् भगवान हैं ऐसा निश्चय उनको भी हुआ ।

राजबाई का वैराग्य गहरा था । वे पुरुष से दस गज की दूरी बनाए रखती थीं । वे मोटे वस्त्र पहनतीं, उनका मिताहारी जीवन था, भूमि पर शयन करती थीं । उनका ब्रह्मचर्य पूर्ण एवं अखंड था । उनकी मृत्यु के पश्चात् जब दादाखाचर ने अग्नि संस्कार के लिए उनकी चिता पर घी छिड़का, अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई ।

तब गोपालानन्द स्वामी आगे आए और कहा, 'अग्नि से कहो कि सती चली गई है, यह मात्र उसकी देह है, अत: उसके शरीर को स्पर्श करने में कोई दोष नहीं है ।' गोपालानन्द स्वामी के ये वचन सुनकर अग्नि प्रज्वलित हो गई । श्रीजीमहाराज के प्रति उनकी अपूर्व भक्ति थी । नियम-वर्तमानों का राजबाई असिधाराव्रत पालन के कारण उनकी श्रीजीमहाराज के अनन्य भक्तों में गणना हुई ।

१९. सुन्दरजी बढ़ई

'कौन आया ?'

'महाराज आपका दास ।' यह सुनकर महाराज हँसे और पूछा, 'दास के लक्षण क्या हैं ?'

'जो कहें वह करे ।'

तब श्रीजीमहाराज ने कहा, 'दास हो तो वस्त्र-आभूषण आदि उतार साधु हो जाओ ।' उस समय सुन्दरजीभाई ने वस्त्र-आभूषण उतार दिये, दाढी-मूँछ मुंडवाकर दीक्षा ले ली । ये सुन्दरजी बढ़ई कच्छ के राजा के कारभारी थे । रामानन्द स्वामी के भक्त थे, किन्तु रामानन्द स्वामी ने उन्हें श्रीजीमहाराज के स्वरूप का निश्चय करवा दिया था । तबसे वे श्रीजीमहाराज के अनन्य भक्त बन गये थे ।

एकबार वे भुज के राजा की ओर से राजकुमार की बारात लेकर गोंडल गये । जब वे गोंडल आये तो उन्हें मालूम हुआ कि महाराज निकट ही बंधिया गाँव में पधारे हुए हैं । उन्होंने सिपाहियों को बारात का ध्यान रखने को कहा और तुरन्त बंधिया दर्शन करने चल पड़े । महाराज मूला खाचर के अतिथि थे । सुन्दरजीभाई की भक्ति की परीक्षा करने के लिए उन्हें साधु बनने के लिए कहा और उन्हें साधु की दीक्षा दी । तुरन्त ही काशी की तीर्थ यात्रा करने का आदेश दिया । सुन्दरजीभाई को महाराज में पूर्ण निश्चय था, अत: बिना किसी शंका के वे काशी के लिए चल पड़े ।

श्रीजीमहाराज ने मुक्तानन्द स्वामी से बातें करते हुए कहा, 'मैंने क्या ही बढ़िया बात की है । मैंने राजा के मंत्री को साधु बना दिया है ।' मुक्तानन्द स्वामी ने कहा, 'आप इसे महान कार्य कहते हैं ? हमारे विरोधी हमें काठियावाड में त्रास दे रहे हैं किन्तु कच्छ का वातावरण सौहार्दपूर्ण है । अब मंत्री जगजीवन जो हमारा शत्रु है हमारे लिए समस्याएँ खड़ी कर देगा । कच्छ में हमें रोटी भी नहीं मिलेगी । सुन्दरजीभाई को बारात का मुखिया बनाकर साथ भेजा था । जब राजा को इस बात का पता चलेगा कि सुन्दरजीभाई मंगल कार्य को बीच में छोड़कर चला गया तो राजा सोचेगा कि स्वामिनारायण ने ही मेरे मंगलमय कार्य में विघ्न डाला है और वह क्रोधित

हो जाएगा ।'

मुक्तानन्द स्वामी की बात सुनने के पश्चात् श्रीजीमहाराज ने आज्ञा दी 'उसे वापस बुलाओ ।' मूलजी ब्रह्मचारी घोड़े पर उन्हें वापस लेने गए । सुन्दरजीभाई लौटे और महाराज को दण्डवत् प्रणाम किया ।

एकबार फिर महाराज ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'महाराज ! आपका सेवक ।'

महाराज हँसे और कहा, 'यदि तुम सेवक हो तो तुम अपने वस्त्र और अलंकार पहन लो और अस्त्र-शस्त्र ले लो और बारात लेकर जाओ ।'

महाराज की आज्ञानुसार, सुन्दरजीभाई जो साधु हो गए थे, उन्होंने फिर से अपने वस्त्रालंकार धारण कर लिए । किन्तु अपनी मूँछे कहाँ से लाते ?

जब वे पुन: बारात में शामिल हुए तो प्रत्येक ने पूछा 'मंगलकार्य में यह अमंगल वेष क्यों बनाया है ?'

सुन्दरजीभाई ने उत्तर दिया, 'मैं अपने कुछ देवता के दर्शन करने गया था । वहाँ के ब्राह्मणों ने कहा कि यदि कुल देवता को प्रसन्न करना चाहते हो तो तुम्हें मुण्डन करवाना होगा । इसलिए मैंने मुण्डन करवाया । बाराती

संतुष्ट हो गए ।'

इस प्रकार जिसे भगवान का यथार्थ निश्चय हो वह भगवान और संत के लिए क्या नहीं कर सकता ? लोकलाज का त्याग करने जैसा कठिन काम सुन्दरजीभाई ने कर दिखाया । परन्तु सुन्दरजीभाई को इस बात का गर्व हो गया, और महाराज से बोले, 'महाराज ! दूसरों की ऐसी कठिन कसौटी मत करना । वे इसका पालन नहीं कर पाएँगे ।'

श्रीजीमहाराज तो उस समय कुछ बोले नहीं । किन्तु बाद में जब वे भादरा गए, उन्होंने १८ हरिभक्तों को पत्र भेजा । उन्हें जेतलपुर रामदास स्वामी के पास जाकर साधु बनने को कहा और फिर भुज में मिलने के लिए कहा । ये अठार त्यागी-साधु बनकर सारे के सारे महाराज के पास भुज आए । श्रीजीमहाराज सबसे अतिशय प्रसन्न होकर आलिंगन कर भेंटे । बाद में सुन्दरजीभाई से सबका परिचय कराया और परिचय में बताया कौन कितने गाँव का जमीनदार और कौन कितना बड़ा व्यवसाय करता है । जब सुन्दरजीभाई ने उनकी ओर देखा उनका गर्व गल गया ।

भुजनगर में जगजीवन नाम का नागर ब्राह्मण राजा के आठ मंत्रियों में से एक मंत्री था । वह श्रीजीमहाराज का कट्टर विरोधी था । किन्तु उसकी पत्नी महाराज की भक्त थी । जब भी महाराज सत्संग के निमित्त भुज आते वे सुन्दरजीभाई के यहाँ ठहरते, वे महाराज के पक्ष में सदा खड़े रहते, तब अपने जीवन की भी चिन्ता न करते । इतने महान भक्त थे सुन्दरजीभाई । सत्संग में भक्तराज के नाम से उनका अटल स्थान है ।

२०. लीलाचिन्तामणि

श्रीजीमहाराज के दैनिक लीलाचरित्रों का वर्णन करते हुए, प्रेमानन्द स्वामी ने महाराज की स्वाभाविक चेष्टाओं-क्रियाओं को भक्ति पदों में बहुत सुन्दर रीति से गाया है । महाराज के चरित्र का नित्य स्मरण करना और रात्रि को सोने से पूर्व इन पदों को गाने का पाठ करने का आदेश प्रत्येक सत्संगी के लिए है । भक्तों के हित के लिए इन पदों को यहाँ लिखा जा रहा है, जिससे प्रत्येक कंठस्थ कर सके ।

स्वाभाविक चेष्टा

राग : गरबी

पद्य-१

प्रथम श्रीहरिने रे, चरणे शीश नमावुं,
नौतम लीला रे, नारायणनी गावुं ॥१॥
मोटा मुनिवर रे, एकाग्र करी मनने,
जेने काजे रे, सेवे जई वनने ॥२॥
आसन साधी रे, ध्यान धरीने धारे,
जेनी चेष्टा रे, स्नेह करी संभारे ॥३॥
सहज स्वाभाविक रे, प्रकृति पुरुषोत्तमनी,
सूणतां सजनी रे, बीक मटाडे जमनी ॥४॥
गावुं हेते रे, हरिनां चरित्र संभारी,
पावन करज्यो रे, प्रभुजी बुद्धि मारी ॥५॥
सहज स्वभावे रे, बेठा होय हरि ज्यारे,
तुलसीनी माळा रे, कर लई फेरवे त्यारे ॥६॥
रमूज करतां रे, राजीवनेण रूपाळां,
कोई हरिजननी रे, मागी लइने माळा ॥७॥
बेवडी राखी रे, बबे मणका जोड़े,
फेरवे ताणी रे, कंईक माळा तोड़े ॥८॥
वातो करे रे, रमूज करीने हसतां,
भेळी करी रे, माळा करमां घसतां, ॥९॥
क्यारेक मींची रे, नेत्रकमळने स्वामी,
प्रेमानन्द कहे रे, ध्यान धरे बहुनामी ॥१०॥

पद्य-२

सांभळ सहियर रे, लीला नटनागरनी,
सूणतां सुखडुं रे, आपे सुखसागरनी ॥१॥
नेत्र कमलने रे, राखी उघाडां क्यारे,
ध्यान धरीने रे, बेसे जीवन बारे ॥२॥

क्यारेक चमकी रे, ध्यान करता जागे,
जोतां जीवन रे, जन्ममरण दु:ख भागे ॥ ३ ॥
पोता आगळ रे, सभा भराई बेसे,
संत हरिजन रे, सामुं जोई रहे छे ॥ ४ ॥
ध्यान धरीने रे, बेठा होय हरि पोते,
संत हरिजन रे, तृप्त न थाय जोते ॥ ५ ॥
साधु कीर्तन रे, गाये वजाडी वाजां,
तेमने जोई रे, मगन थाय महाराजा ॥ ६ ॥
तेमनी भेळा रे, चपटी वजाडी गाय,
संत हरिजन रे, नीरखी राजी थाय ॥ ७ ॥
क्यारेक साधु रे, गाय वजाडी ताळी,
भेळा गाय रे, ताळी दई वनमाळी ॥ ८ ॥
आगळ साधु रे, कीर्तन गाय ज्यारे,
पोता आगळ रे, कथा वंचाय त्यारे ॥ ९ ॥
पोते वारता रे, करता होय बहुनामी,
खसता आवे रे, प्रेमानन्दना स्वामी ॥ १० ॥

पद्य-३

मनुष्यलीला रे, करता मंगळकारी,
भक्त सभामां रे, बेठा भवभयहारी ॥ १ ॥
जेने जोता रे, जाए जग आसक्ति,
ज्ञान वैराग्य रे, धर्म सहित जे भक्ति ॥ २ ॥
ते सम्बन्धी रे, वार्ता करता भारी,
हरि समजावे रे, निजजनने सुखकारी ॥ ३ ॥
योग ने सांख्य रे, पंचरात्र वेदान्त,
ए शास्त्रनो रे, रहस्य कहे करी खांत ॥ ४ ॥
क्यारेक हरिजन रे, देश देशना आवे,
उत्सव ऊपर रे, पूजा बहुविध लावे ॥ ५ ॥
जाणी पोताना रे, सेवकजन अविनाशी,
तेमनी पूजा रे, ग्रहण करे सुखराशि ॥ ६ ॥

भक्त पोताना रे, तेने श्याम सुजाण,
ध्यान करावी रे, खेंचे नाडी प्राण ॥ ७ ॥
ध्यानमांथी रे, उठाडे निजजनने,
देहमां लावे रे, प्राण इन्द्रिय मनने ॥ ८ ॥
संत सभामां रे, बेठा होय अविनाश,
कोई हरिजनने रे, तेडवो होय पास ॥ ९ ॥
पहेली आंगळी रे, नेत्रतणी करी सान,
प्रेमानन्द कहे रे, साद करे भगवान ॥ १० ॥

पद्य-४

मोहनजीनी रे, लीला अति सुखकारी,
आनन्द आपे रे, सूणतां न्यारी न्यारी ॥ १ ॥
क्यारेक वातो रे, करे मुनिवर साथे,
गुच्छ गुलाबना रे, चोळे छे बे हाथे ॥ २ ॥
शीतळ जाणी रे, लींबु हार गुलाबी,
तेने राखे रे, आंख्यो ऊपर दाबी ॥ ३ ॥
क्यारेक पोते रे, राजीपामां होये,
वातो करे रे, कथा वंचाय तोये ॥ ४ ॥
सांभळे कीर्तन रे, पोते कांईक विचारे,
पूछवा आवे रे, जमवानुं कोई त्यारे ॥ ५ ॥
हार चढावे रे, पूजा करवा आवे,
तेना ऊपर रे, बहु खीजी रीसावे ॥ ६ ॥
कथा सांभळतां रे, हरे हरे कही बोले,
मर्म कथानो रे, सूणी मगन थई डोले ॥ ७ ॥
भान कथामां रे, बीजी क्रिया मांहे,
क्यारेक अचानक रे, जमतां हरे बोलावे ॥ ८ ॥
थाय स्मृति रे, पोताने ज्यारे तेनी,
थोडुंक हसे रे, भक्त सामुं जोई बेनी ॥ ९ ॥
एम हरि नित्य नित्य रे, आनन्द रस वरसावे,
ए लीलारस रे, जोई प्रेमानन्द गावे ॥ १० ॥

पद्य-५

सांभळ सजनी रे, दिव्य स्वरूप मुरारि,
करे चरित्र रे, मनुष्य विग्रह धारी ॥१॥
थया मनोहर रे, मोहन मनुष्य जेवा,
रूप अनुपम रे, निजजनने सुख देवा ॥२॥
क्यारेक ढोलिये रे, बेसे श्री घनश्याम,
क्यारेक बेसे रे, चाकळे पूरणकाम ॥३॥
क्यारेक गोदडुं रे, ओछाडे सहिते,
पाथर्युं होय रे, ते पर बेसे प्रीते ॥४॥
क्यारेक ढोलिया रे, ऊपर तकियो भाळी,
ते पर बेसे रे, श्याम पलांठी वाळी ॥५॥
घणुंक बेसे रे, तकिये ओठींगण दईने,
क्यारेक गोठण रे, बांधे खेस दईने ॥६॥
क्यारेक राजी रे, थाय अतिशे आली,
संत हरिजनने रे, भेटे बाथमां घाली ॥७॥
क्यारेक माथे रे, लई मेले बे हाथ,
छाती मांहे रे, चरणकमल दे नाथ ॥८॥
क्यारेक आपे रे, हार तोरा गिरिधारी,
क्यारेक आपे रे, अंगनां वस्त्र उतारी ॥९॥
क्यारेक आपे रे, प्रसादीना थाळ,
प्रेमानन्द कहे रे, भक्ततणा प्रतिपाळ ॥१०॥

पद्य-६

एवां करे रे, चरित्र पावनकारी,
शुकजी सरखा रे, गावे नित्य संभारी ॥१॥
क्यारेक जीभने रे, दांत तळे दबावे,
डाबे जमणे रे, पडखे सहज स्वभावे ॥२॥
छींक ज्यारे आवे रे, त्यारे रूमाल लईने,
छींक खाये रे, मुख पर आडो दईने ॥३॥

रमूज आणी रे, हसे अति घनश्याम,
मुख पर आडो रे, रूमाल दई सुखधाम ॥४॥
क्यारेक वातो रे, करता थका देव,
छेडे रूमालने रे, वळ देवानी टेव ॥५॥
अति दयाळु रे, स्वभाव छे स्वामीनो,
परदु:खहारी रे, वारी बहुनामीनो ॥६॥
कोईनो दु:खियो, देखी न खमाये,
दया आणी रे, अति आकळा थाये ॥७॥
अन्न, धन, वस्त्र रे, आपीने दु:ख टाळे,
करुणादृष्टि रे, देखी वान ज वाळे ॥८॥
डाबे खभे रे, खेस आडसोडे नाखी,
चाले जमणा रे, करमां रूमाल राखी ॥९॥
क्यारेक डाबो रे, कर केड ऊपर मेली,
चाले वहालो रे, प्रेमानन्दनो हेली ॥१०॥

पद्य-७

नित्य नित्य नौतम रे, लीला करे हरिराय,
गातां सूणतां रे, हरिजन राजी थाय ॥१॥
सहज स्वभावे रे, उतावळा बहु चाले,
हेत करीने रे, बोलावे बहु वहाले ॥२॥
क्यारेक घोड़े रे, चडवुं होय त्यारे,
क्यारेक संतने रे, पीरसवा पधारे ॥३॥
त्यारे डाबे रे, खभे खेसने आणी,
खेसने बांधे रे, केड संगाथे ताळी ॥४॥
पीरसे लाडु रे, जलेबी घनश्याम,
जणस जम्यानी रे, लई लई तेनां नाम ॥५॥
फरे पंगतमां रे, वारंवार महाराज,
संत हरिजनने रे, पीरसवाने काज ॥६॥
श्रद्धाभक्ति रे, अति घणी पीरसतां,
कोईना मुखमां रे, आपे लाडु हसतां ॥७॥

पाछली रात्रि रे, चार घडी रहे ज्यारे,
दातण करवा रे, ऊठे हरि ते वारे ॥८॥
न्हावा बेसे रे, नाथ पलांठी वाळी,
कर लई कळशो रे, जळ ढोळे वनमाळी ॥९॥
कोरे वस्त्रे रे, करी शरीरने लुवे,
प्रेमानन्द कहे रे, हरिजन सर्वे जुवे ॥१०॥

पद्य-८

रूडा शोभे रे, नाहीने उभा होये,
वस्त्र पहेरेलुं रे, साथळ वच्चे निचोवे ॥१॥
पग साथळने रे, लुहीने सारंगपाणि,
कोरा खेसने रे, पहेरे सारी पेठे ताणी ॥२॥
ओढी ऊपरणी रे, रेशमी कोरनी वहाले,
आवे जमवा रे, चाखडीए चढी चाले ॥३॥
माथे ऊपरणी रे, ओढी बेसे जमवा,
कान उघाडा रे, राखे मुजने गमवा ॥४॥
जमतां डाबा रे, पगनी पलांठी वाळी,
ते पर डाबो रे, कर मेले वनमाळी ॥५॥
जमणा पगने रे, राखी उभो श्याम,
ते पर जमणो रे, कर मेले सुखधाम ॥६॥
रूडी रीते रे, जमे देवना देव,
वारे वारे रे, पाणी पीधानी टेव ॥७॥
जणस स्वादु रे, जणाय जमतां जमतां,
पासे हरिजन रे, बेठा होय मनगमता ॥८॥
तेमने आपी रे, पछी पोते जमे,
जमतां जीवन रे, हरिजनने मन गमे ॥९॥
फेरवे जमतां रे, पेट ऊपर हरि हाथ,
ओडकार खाये रे, प्रेमानन्दनो नाथ ॥१०॥

पद्य-९

चळुं करे रे, मोहन तृप्त थईने,
दांतने खोतरे रे, सळी रूपानी लईने ॥१॥
मुखवास लईने रे, ढोलिये बिराजे,
पूजा करे रे, हरिजन हेते झाझे ॥२॥
पांपण ऊपर रे, आंटो लई अलबेलो,
फेंटो बांधे रे, छोगुं मेली छेलो ॥३॥
वर्षा ऋतुने रे, शरद ऋतुने जाणी,
घेला नदीनां रे, निर्मळ नीर वखाणी ॥४॥
संत हरिजनने रे, साथे लईने श्याम,
न्हावा पधारे रे, घेले पूरणकाम ॥५॥
बहु जलक्रीडा रे, करता जळमां न्हाय,
जळमां ताळी रे, दईने कीर्तन गाय ॥६॥
न्हाईने बारे रे, नीसरी वस्त्र पहेरी,
घोडे बेसी रे, घेर आवे रंगलहेरी ॥७॥
पावन यशने रे, हरिजन गाता आवे,
जीवन जोईने रे, आनन्द उर न समावे ॥८॥
गढपुरवासी रे, जोईने जग आधार,
सुफळ करे छे रे, नेणां वारंवार ॥९॥
आवी बिराजे रे, ओसरीए बहुनामी,
ढोलिया ऊपर रे, प्रेमानन्दना स्वामी ॥१०॥

पद्य-१०

निज सेवकने रे, सुख देवाने काज,
पोते प्रगट्या रे, पुरुषोत्तम महाराज ॥१॥
फळियामांही रे, सभा करी बिराजे,
पूरण शशी रे, उडुगणमां जेम छाजे ॥२॥
ब्रह्मरस वरसी रे, तृप्त करे हरिजनने,
पोढे रात्रे रे, जमी श्याम शुद्ध अन्नने ॥३॥

बे आंगळीए रे, तिलक कर्यानी पेरे,
भाल वच्चे रे, उभी राखी फेरे ॥४॥
सूतां सूतां रे, माळा मागी लईने,
जमणे हाथे रे, नित्य फेरवे चित्त दईने ॥५॥
भूल न पडे रे, केदी एवुं नियम,
धर्मकुंवरनी रे, सहज प्रकृति एम ॥६॥
भरनिद्रामां रे, पोढ्या होय मुनिराय,
कोई अजाणे रे, लगार अडी जाय ॥७॥
त्यारे फडकी रे, जागे सुंदर श्याम,
'कोण छे ?' पूछे रे, सेवकने सुखधाम ॥८॥
एवी लीला रे, हरिनी अनंत अपार,
में तो गाई रे, कांईक मति अनुसार ॥९॥
जे कोई प्रीते रे, शीखशे सुणशे गाशे,
प्रेमानन्दनो रे, स्वामी राजी थाशे ॥१०॥

राग : धोल

ओरा आवो श्याम स्नेही, सुंदर वर जोऊं व्हाला,
जतन करीने जीवन मारा, जीवमांही प्रोऊं व्हाला ॥१॥
चिह्न अनुपम अंगो अंगनां, सूरते संभारुं व्हाला,
नखशिख नीरखी नौतम मारा, उरमां उतारुं व्हाला ॥२॥
अरुण कमळसम जुगल चरणनी, शोभा अति सारी व्हाला,
चिंतवन करवा आतुर अति, मनवृत्ति मारी व्हाला ॥३॥
प्रथम ते चिंतवन करुं, सुंदर सोळे चिह्न व्हाला,
ऊर्ध्वरेखा ओपी रही, अतिशे नवीन व्हाला ॥४॥
अंगूठा आंगळी वच्चेथी, नीसरीने आवी व्हाला,
पानीनी बे कोरे जोतां, भक्त ने मनभावी व्हाला ॥५॥
जुगल चरणमां कहुं मनोहर, चिह्न तेनां नाम व्हाला,
शुद्ध मने करी संभारतां, नाश पामे काम व्हाला ॥६॥
अष्टकोण ने ऊर्ध्वरेखा, स्वस्तिक, जाम्बु ने जव व्हाला,
वज्र, अंकुश, केतु ने पद्म, जमणे पगे नव व्हाला ॥७॥

त्रिकोण, कळश ने गोपद सुंदर, धनुष ने मीन व्हाला,
अर्धचन्द्र ने व्योम सात छे, डाबे पगे चिह्न व्हाला ॥८॥
जमणा पगना अंगूठाना नखमांही चिह्न व्हाला,
ते तो नीरखे जे कोई भक्त, प्रीतिए प्रवीण व्हाला ॥९॥
ऐ ज अंगूठाने पासे, तिल एक नौतम धारुं व्हाला,
प्रेमानन्द कहे नीरखुं प्रीते, प्राण लई वारु व्हाला ॥१०॥

राग : गरबी

पद-१

हवे मारा वहालाने नहि रे विसारुं रे,
श्वास उच्छ्वासे ते नित्य संभारुं रे ॥१॥
पड्युं मारे सहजानन्दजीशुं पानुं रे,
हवे हुं तो केम करी राखीश छानुं रे ॥२॥
आव्युं मारे हरिवर वरवानुं टाणुं रे,
ए वर न मळे खरचे नाणुं रे ॥३॥
ए वर भाग्य विना नव भावे रे,
ए स्नेह लग्न विना नव आवे रे ॥४॥
दुरीजन मन रे माने तेम कहेज्यो रे,
स्वामी मारा हृदयानी भीतर रहेज्यो रे ॥५॥
हवे हुं तो पूरण पदवीने पामी रे,
मळ्या मुने निष्कुळानन्दना स्वामी रे ॥६॥

पद-२

हवे मारा वहालानां दर्शन सारु,
हरिजन आवे हजारे हजारुं ॥१॥
ढोलिये बिराजे सहजानन्द स्वामी,
पूरण पुरुषोत्तम अंतरजामी ॥२॥
सभामध्ये बेठां मुनिनां वृंद,
तेमां शोभे तारे वींट्यो जेम चन्द्र ॥३॥
दुर्गपुर खेल रच्यो अति भारी,
भेळा रमे साधु ने ब्रह्मचारी ॥४॥

ताळी पडे ऊपडती अति सारी,
धुन्य थाय चौद लोक थकी न्यारी ॥५॥
पाघलडीमां छोगलियुं अति शोभे,
जोई जोई हरिजननां मन लोभे ॥६॥
पधार्या वहालो सर्वे ते सुखना राशि,
सहजानन्द अक्षरधामना वासी ॥७॥
भांगी मारी जन्मोजन्मनी खामी,
मळ्या मुने निष्कुळानन्दना स्वामी ॥८॥

(इसके बाद पाँच मिनट तक भगवान और संत का ध्यान करो और फिर उन्हें लिटा दो ।)

राग : बिहाग

पोढे प्रभु सकल मुनि के श्याम;
स्वामिनारायण दिव्यमूर्ति, संतनके विश्राम...पोढे० ॥१॥
अक्षर पर आनन्दघन प्रभु, कियो हे भूपर ठाम;
जेही मिलत जन तरत माया, लहत अक्षरधाम...पोढे० ॥२॥
शारद शेष महेश महामुनि, जपत जेही गुणनाम;
जास पदरज शीश धरी धरी, होत जन निष्काम...पोढे० ॥३॥
प्रेम के पर्यंक पर प्रभु, करत सुख आराम;
मुक्तानन्द निज चरणढिग गुन, गावत आठुं जाम...पोढे० ॥४॥

राग : गरबी

रे श्याम तमे साचुं नाणुं,
बीजुं सर्वे दुःखदायक जाणुं...रे श्याम० टेक
रे तम विना सुख संपत कहावे, ते तो सर्वे महादुःख उपजावे,
अंते एमां काम कोई ना'वे...रे श्याम०॥१॥
रे मूरख लोक मरे भटकी, जूठा संगे हारे शिर पटकी,
तेथी मारी मनवृत्ति अटकी...रे श्याम०॥२॥
रे अखंड अलौकिक सुख सारुं, ते जोई जोई मन मोह्युं मारुं,
धरा धन तम उपर वारुं...रे श्याम०॥३॥

रे ब्रह्माथी कीट लगी जोयुं, जूठुं सुख जाणीने वगोव्युं,
मुक्तानन्द मन तम संग मोह्युं...रे श्याम०॥४॥

दोहा

सत्संगी सहु सांभळो, उर आनन्द आणो आ वार,
आपणने जे मळ्या छे ते रहे छे माया पार ।
आवा बीजा कोईने मळ्या नथी मळशे नहीं,
देह मूकी जेने पामवुं ते देह छतां मळ्या अहीं ।
मोटो लहावो लई करी थई बेठा छो सुखिया थई,
आ स्वामीना प्रतापथी कोई वाते खामी नव रही ।

•

निजाश्रितानां सकलार्तिहन्ता सधर्मभक्तेरवनं विधाता ।
दाता सुखानां मनसेप्सितानां तनोतु कृष्णोऽखिलमङ्गलम् नः ॥

२१. नियम (सदाचरण के नैतिक नियम)

श्रीजीमहाराज ने अपनी 'शिक्षापत्री धर्मामृत' और 'निष्काम शुद्धि' में गृहस्थ हरिभक्तों तथा त्यागियों-साधुओं के लिए सदाचार के नियम लिखे हैं । शिक्षापत्री में गृहस्थियों, स्त्रियों, विधवाओं, आचार्यों, आचार्य-पत्नियों, आदि के लिए दिए गए नियमों का दृढ़ता से यथार्थ पालन करना चाहिए । त्यागियों-साधुओं को धर्मामृत और निष्काम शुद्धि में दिए गए नियमों का पालन करना चाहिए यह श्रीजीमहाराज की आज्ञा है । नियम का पालन न करने से ऋषि और देवता को कर्म के कारण विघ्न आया । इसलिए, जो सत्पुरुषों के द्वारा निर्धारित सदाचार के नियमों का उल्लंघन करते हैं उन्हें सुख नहीं मिलता । त्यागी और गृहस्थ सबको अपने अपने धर्म में रहना चाहिए । जो सदाचार के नियमों का पालन मध्यम मार्ग से न करके अति का सहारा लेते हैं उन्हें दुःख मिलता है । जैसे या तो बहुत खाना खायेंगे या बिलकुल नहीं खाएँगे, 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' यही सिद्धान्त है । जो विवेकपूर्वक इन नियमों का पालन दृढता से करते हैं, उनमें संतों के समस्त गुण आते हैं । वैराग्य न हो तो वैराग्य आता है और वे पंचविषयों को जीत लेते हैं । नियमरूप जो धर्ममर्यादा है जो उसका पालन नहीं करता वह

श्रीजीमहाराज को प्रिय नहीं है । वचनामृत में श्रीजीमहाराज ने कहा है : 'जो सत्पुरुषों की आज्ञानुसार जीवन जीता है मानो व आत्मसत्ता रूप से जीवन जीता है ।' वचनामृत में श्रीजीमहाराज का वचन है कि जो नियमों का पालन करता है उसका पैर सत्संग में अचल है । अत: नियम का पालन अपने जीवन के मूल्य पर भी करना चाहिए ।

त्यागियो-साधुओं को शिक्षापत्री, धर्मामृत और निष्कामशुद्धि के अनुसार पाँच नियम वर्तमान - निष्काम, निर्लोभ, नि:स्वाद, नि:स्नेह, निर्मान का पालन करना चाहिए ।

सत्संगियों को चाहिए कि वे मांस, मदिरा, चोरी, व्यभिचार से दूर रहें और न तो अपने को नीचे गिराए न दूसरों को नीचे गिराए । इन पाँच वर्तमानों के अतिरिक्त नैतिक व्यवहार के निम्न ग्यारह मूल नियमों का पालन करें ।

(१) किसी जीव की हिंसा न करो (२) परस्त्री का संग मत करो (३) मांस न खाओ (४) मादक द्रव्यों को न तो फूँको न सेवन करो (५) विधवा का स्पर्श मत करो (६) स्त्री-आत्महत्या न करो (७) कभी चोरी मत करो (८) कभी किसी पर झूठे आरोप मत लगाओ (९) किसी देव की निन्दा न करो (१०) अशुद्ध व्यक्ति का खाना-पीना स्वीकार न करो (११) जो व्यक्ति सत्संग विरोधी हो उससे कथावार्ता कभी मत सुनो ।

निश्चय (निष्ठा)

जैसे हम को अपना नाम, अपनी जाति, अपने गाँव आदि का ज्ञान है और जिस प्रकार से वह दृढ़ होता है और हम भूलते नहीं है उसी प्रकार अपने इष्टदेव सहजानन्द स्वामी अनन्तकोटि ब्रह्मांड के आधार, अक्षरधाम के स्वामी, सर्व अवतार के अवतारी, सर्व कारणों के कारण और सर्वोपरि हैं । तथा गुणातीतानन्द स्वामी मूल अक्षर - महाराज के रहने के धाम हैं ऐसा जो दृढ़ता से समझता है उसे निश्चय कहते हैं । भगवान अपने स्वरूप का निश्चय करवाने और अपना सुख देने के लिए इस पृथ्वी पर मनुष्य रूप में पधारते हैं । उनका मनुष्य रूप और उनकी क्रिया मनुष्य के समान ही होती है । तो भी वे दिव्य हैं, कल्याणकारी हैं यह समझना निश्चय कहलाता है ।

उनके मनुष्य रूप में और अक्षरधाम में रहनेवाले भगवान के रूप में कोई अन्तर नहीं हैं ऐसा समझना निश्चय कहलाता है । जब वे परमात्मा इस

पृथ्वी के ऊपर प्रत्यक्ष न हों तो उनका धारक परम एकांतिक संत जिसके द्वारा वे इस पृथ्वी के ऊपर अखंड विराजते हैं उस स्वरूप को जान-समझकर उसमें सदा दिव्य भाव रखना निश्चय कहलाता है ।

जो ऐसी निष्ठा रखता है उसमें सर्वोत्तम कोटि का निर्विकल्प निश्चय आ जाता है और जिसे निर्विकल्प निश्चय हो गया है उसे अष्ट आवरण युक्त जो कोटि कोटि ब्रह्मांड है वे अक्षर की तुलना में अणु के समान छोटे प्रतीत होते हैं । पुरुषोत्तमनारायण के धामरूप जो अक्षर है उसके समान रूपवाला हो जाता है और तब पुरुषोत्तम की उपासना करता है, अक्षररूप/ब्रह्मरूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना करना उत्तम निर्विकल्प निश्चय कहलाता है ।

पक्ष

सत्संगी के लिए दृढ़ निश्चयवाला होना अनिवार्य है । हमारे इष्टदेव श्रीजीमहाराज तथा महाराज को अखंड धारण करनेवाले प्रगट ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी-प्रमुखस्वामी के आश्रित सत्संगी वैष्णवों के साथ दृढ पक्ष रखना पक्के हरिभक्त के लिए अनिवार्य अंग है । भगवान के भक्तों का पक्ष रखने के लिए बहुत सारे भक्तों का श्रीजीमहाराज ने आत्यंतिक कल्याण किया है । पक्ष रखने के मान घटे या बढ़े, देह जाए कि रहे, लेकिन भगवान के भक्त का पक्ष छोड़ना नहीं चाहिए । भगवान के भक्त का पक्ष रखने के कारण हम भगवान की अतिशय प्रसन्नता प्राप्त कर लेते हैं । जैसे हमारे सगे-सम्बंधी में दोष भी हों तो भी हम उसका पक्ष रखते हैं उसी प्रकार भगवान के भक्त के दैहिक स्वभाव में दोष न देखकर यह देखे कि यह तो भगवान का आश्रय है इस बात को मुख्य रखकर उसका पक्ष रखें । इससे भगवान प्रसन्न होते हैं ।

२२. गुंदाली गाँव के दो काठी हरिभक्त

स्वामिनारायण सम्प्रदाय के दो साधु गुंदाली गाँव के पादर में (गाँव के बाहरी छोर में) भिक्षा माँग रहे थे । लगभग दोपहर हो गया था तो भी उन्हें कोई भिक्षा नहीं मिली थी । काठी मेरामन और मामैया की आई रणदेबाई (माँ) को अपने पीहर में सत्संग का लाभ मिला था । जब उसने साधुओं

को देखा तो उसने किसीके द्वारा साधुओं को घर बुलाया । साधुओं का उसने भक्तिपूर्वक सत्कार किया और उन्हें खिचडी के लिए सीधा दिया । मेरामन और मामैया दोनों भाई खेत पर गए हुए थे । आई (माँ) दूर बैठी साधुओं के दर्शन कर रही थीं ।

थोडी ही देर में वहाँ जिस प्रकार फगुहारे एकदम से टूट पड़ते हैं उसी प्रकार स्थानीय दरबार का कुंवर और उसके मित्र दौड़ते हुए आए । वे बहुत शैतान थे । साधु को रसोई बनाते देखकर उनमें से एकने साधु के पूरी ताकत से डंडा मारा । वह तो वहीं लोट गया । दूसरे ने दूसरे साधु की चोटी पकड़कर ऊपर उठाया और हवा में घुमाकर पत्थर की भाँति दूर पटक दिया । आई, जो दूर से इस निर्दय घटना को देख रही थी काँप गई, वे चिल्लाई और कहा, 'ओ बेटे ! हमारे साधुओं को मत मारो ।' किन्तु किसी ने भी उनकी एक न सुनी । दुष्ट युवकों ने खिचड़ी के बरतन को उलट दिया, सारा भोजन धूल में मिला दिया, साधुओं को गाँव से बाहर निकाल दिया । शोर-गुल मचाते, हाहाहीही करते जैसे कोई महान काम कर डाला हो उसी तरह गर्वाते हुए वह टोली चली गई । आई यह सब देखती रह गई और जोर जोर से सुबकने लगी ।

दोपहर को मेरामन और मामैया घर खाना खाने आए । उन्होंने अपनी माँ को रोते हुए देखा । खाना पकाने के बर्तन आँगन में बिखरे पड़े थे, कण्ठी के मनके भी वहाँ बिखरे पड़े थे, यह सब उन्होंने देखा । दोनों भाई अपनी माँ के पास गए और पूछा, 'आई, क्या हुआ है ? तुम क्यों रो रही हो ?' आई ने अपना सिर ऊँचा करके अपने पुत्रों से कहा, 'तुम्हारे मामा के साधुओं को पीटा गया है और उनका अपमान कर धक्के देकर गाँव से बाहर कर दिया है ।' पुत्र अपनी माँ की बात नहीं समझ पाए तब उन्होंने अपनी माँ से पूरी बात साफ साफ बताने के लिए कहा । 'माँ ! कौन आया था और क्या कैसे हुआ ?'

आई ने क्रोधभरी आँखों से सारी दुर्घटना सुना दी । आई घटना सुना रही थीं उधर उनके पुत्रों का क्षत्रीय रक्त उबलने लगा । उन्होंने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल कर कहा, 'आई ! जब तक हम उनका सिर धड़ से अलग नहीं कर देते अन्न को हाथ भी नहीं लगाएँगे ।' तब मामैया ने सुझाव दिया, 'कुछ करने से पहले हमें आई (माँ) को सारे सामान के साथ गढ़डा भेज देना चाहिए । दरबार अपने पुत्र का बदला अवश्य लेगा ।' मेरामन ने सुझाव मान लिया । उन्होंने बैलगाड़ी में सारा सामान भरकर आई को तो गढ़डा भेज दिया । गाँव के बाहर गढ़डा के रास्ते पर उन दोनों ने अपनी माँ से कहा, 'आई ! यदि कुशल रहे तो हम महाराज के सामने गढ़डा में मिलेंगे, नहीं तो हम तुमसे अक्षरधाम में मिलेंगे ।' आई ने भी मामा के साधुओं की मार-पीट का बदला लेने के लिए अपने सिर की बलि चढ़ाने को तत्पर बेटों को आशीर्वाद दिया, 'जय स्वामिनारायण' कहकर आगे बढ गईं ।

दोनो भाई घर लौटकर आए उन्होंने स्नान किया । अपने घोड़ों पर बैठकर दरबार के लिए चल दिए । अपनी तलवार निकालकर चुनौती देते हुए बोले, 'हमारे मामा के साधुओं को किसने मारा ?'

सुनते ही गाँव के दरबार ने कहा, 'उन स्वामिनारायण के मुँडों को ?'

'हाँ, हाँ, हमारे मामा के साधु को ।'

घमंडी राजकुमार ने अपनी छाती ठोकते हुए कहा, 'मैंने मारा है । तुम मेरा क्या कर लोगे ?'

काठी भाइयों की बरछी, सर्प-जिह्वा की तरह उनके हाथ में लपलपा

रही थी । काठी के एक ही वार में कुंवर ढेर हो गया । सारी सभा में हाहाकार मच गया । कुछ लोगों ने उन्हें वश में करना चाहा, तब दूसरे भाई ने एक और साथी का सिर धड़ से अलग कर दिया । चारों ओर शोर मच गया - पकड़ो, पकड़ो । किन्तु दोनों भाई वायुवेग से वहाँ से निकल गए ।

कुंवर को मारने के पश्चात् दोनों भाई दरबार के खेत में घुस गए, तलवार से उसमें खड़ी खेती को तहस-नहस कर दिया । फसल के नष्ट करने से उनकी तलवारें भोथरी हो गई थीं । तभी उन्होंने दरबार के आदमियों को आते देखा । तो भी उन्होंने उच्च उद्देश्य के लिए अपने प्राण देने से पूर्व उन आदमियों से वीरोचित लोहा लिया । इस तरह उन्होंने मामा के साधुओं के अपमान का जवाब अपने प्राणों से दे दिया ।

जब महाराज ने गढ़डा में सारे समाचार सुने तो उन्होंने कहा, 'जो इस प्रकार से साधुओं का पक्ष रखकर मरे वे धन्य हैं । युद्ध में मरने से यदि स्वर्ग की प्राप्ति होती है तो इन दो भाइयों को मेरे कारण से प्राण न्योछावर करने से उन्हें अक्षरधाम की प्राप्ति हो गई । उनका मुक्तानन्द स्वामी जैसा कल्याण करूँगा ।' इस तरह श्रीजीमहाराज ने इन दो भाइयों को अक्षरधाम में स्थान दिया क्योंकि उन्होंने उनके साधुओं के अपमान का प्रतिकार किया था । पक्ष का ऐसा प्रताप है ।

२३. परमचैतन्यानन्द स्वामी

परमचैतन्यानन्द स्वामी रामानन्द स्वामी से दीक्षा लेकर साधु हुए थे । उसके पश्चात् भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और विद्वत्ता प्राप्त की । श्रीजीमहाराज ने उन्हें सद्गुरु के पद पर नियुक्त किया था, और उन्हें पचास साधु दिये थे । रामानन्द स्वामी के समय के इन वृद्ध परमचैतन्यानन्द स्वामी को श्रीजीमहाराज बहुत आदर देते थे, हरिभक्त भी उन्हें बहुत मान देते । कोई हरिभक्त यदि महाराज को कोई पदार्थ भेंट करना चाहता तो पहले उसे परमचैतन्यानन्द स्वामी के पास लाना होता था तभी केवल वे महाराज के दर्शन कर सकते थे, ऐसा था उनका मान ।

एकबार मोडा गाँव से एक क्षत्रिय हरिभक्त साधु बनने के लिए वरताल आये । परन्तु श्रीजीमहाराज ने उन्हें आज्ञा दी, 'बोचासण के काशीदास का हल चलाओ ।'

श्रीजीमहाराज की आज्ञानुसार उन्होंने काशीदास का तीन वर्ष तक हल चलाया । इससे श्रीजीमहाराज उन पर बहुत प्रसन्न हुए । उन्हें त्यागी की दीक्षा देकर उनका अक्षरानन्द नाम रखा । तत्पश्चात् उनकी सेवा से प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हें वरताल मन्दिर का महन्त बनाया ।

परमचैतन्यानन्द स्वामी सत्संग में पुराने थे और अक्षरानन्द स्वामी नए नए थे । उन्हें महन्त बना दिया इसे उन्होंने अपना अपमान समझा । वे रूठकर सत्संग से चले गए । अब उनके पचास साधुओं ने उन्हें जाते देखा तो वे भी उनके पीछे चल दिए ।

स्वामी ने उनसे पूछा, 'तुम लोग मेरे पीछे पीछे क्यों चले ?'

पचासों शिष्यों ने कहा, 'हम गुरु के साथ हैं ।'

तब स्वामी ने समझाया, 'मेरा मान खंडित हुआ मैं तो इसलिए निकला हूँ । मैं अभी भी महाराज का भजन करता हूँ । महाराज भगवान हैं, कल्याण दाता हैं । अत: तुम सब लौट जाओ, उनमें पूर्ण विश्वास रखो और सदा उनका भजन करो ।' सभी पचास साधु लौट आए । जब श्रीजीमहाराज ने इस घटना का वृत्तान्त सुना तो उन्होंने कहा, 'जो चला गया वह हमारा भक्त है और जो लौट आए वे अज्ञानी हैं । परमचैतन्यानन्द स्वामी हमारे हैं । वह

तो बाहर निकल गये, किन्तु वह सत्संग में ही है ।'

परमचैतन्यानन्द स्वामी विचरण करते हुए धरमपुर पधारे । उस समय वहाँ की महारानी कुशलकुंवरबा ब्राह्मणों से कथा सुन रही थीं । वे मुमुक्षु थीं । कथा समाप्त होने पर वे साधुओं के चरण धो रही थीं और चरणामृत प्रसाद के रूप में ग्रहण करती थीं । जब वे चरण धो रही थीं तो धोती धोती वहाँ आईं जहाँ परमचैतन्यानन्द स्वामी खड़े थे । जब महारानी उनके चरणों को धोने के लिए झुकीं तो स्वामी वहाँ से दूर हट गए । कुशलकुंवरबा ने तुरन्त समझ लिया कि ये संत तो स्त्री तथा धन के त्यागी हैं । महारानी ने उनकी अधिक महिमा को पहचाना । उनके हृदय में अपार शान्ति हो गई ।

इसके पश्चात् तो कुशलकुंवरबा अपने राजकुमार से स्वामी का नित्य पूजन करवातीं और पर्दे के पीछे बैठकर कथावार्ता सुनतीं । भगवान स्वामिनारायण के अद्‌भुत ऐश्वर्य प्रताप की परमचैतन्यानन्द स्वामी ने बहुत सी बातें कहीं । इससे महारानी को सत्संग का रंग चढ गया । वे भगवान स्वामिनारायण की आश्रित बनीं और उनका भजन करने लगीं । वे अनेकबार स्वामी को हाथी पर बैठाकर अपने नगर में घुमातीं । महाराज के संत की

अपार महिमा को समझतीं ।

गढ़पुर में श्रीजीमहाराज को इन सब बातों का पता चला । उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी को बुलाकर कहा, 'दलदल में गड़े हाथी को केवल दूसरा हाथी ही खींचकर निकाल सकता है । धरमपुर जाओ क्योंकि परम-चैतन्यानन्द स्वामी को केवल आप ही वापस ला सकते हैं ।'

श्रीजीमहाराज की आज्ञा से मुक्तानन्द स्वामी एवं गुणातीतानन्द स्वामी धरमपुर आए । उस समय परमचैतन्यानन्द स्वामी हाथी पर बैठकर नगर में घूम रहे थे । उनकी दृष्टि मुक्तानन्द स्वामी के ऊपर पड़ी । वे रास्ते पर एक ओर खड़े थे । तुरन्त हाथी के ऊपर से उतरकर उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी को दंडवत्‌प्रणाम किया और पूछा, 'महाराज की क्या आज्ञा है ?'

मुक्तानन्द स्वामी ने कहा, 'महाराज आपको बुला रहे हैं ।' उसी स्थल से वे गढ़पुर के लिए चल दिए और उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी एवं गुणातीतानन्द स्वामी को धरमपुर में ठहरने के लिए विनती की और कहा, 'यह बाई बहुत ही मुमुक्षु है, आप यहाँ रहकर कथावार्ता करें ।' गढ़पुर आकर वे श्रीजीमहाराज से मिले ।

परमचैतन्यानन्द स्वामी बुद्धिशाली एवं जिज्ञासु थे । किन्तु श्रीजीमहाराज की सर्वोपरी की बातें उनको रुचती नहीं थीं । गोपालानन्द स्वामी श्रीजीमहाराज के सर्वोपरी स्वरूप की बातें करते, परमचैतन्यानन्द स्वामी उन्हें कहा रखते, 'बच्चे ! भगवान का मूल्यांकन मत कर ।'

एकबार गढ़डा में जलझुलना एकादशी के महोत्सव पर रघुवीरजी महाराज वहाँ पधारे । सारे लोग ठाकुरजी को स्नान कराने के लिए घेला नदी पर गए । परन्तु वे परमचैतन्यानन्द स्वामी को साथ में ले जाना भूल गए । उन्हें बुरा लगा और कहा, 'मेरी कोई परवाह नहीं करता ।' यह सुनकर बालमुकुंदानंद स्वामी जो उनकी सेवा में थे और गोपालानन्द स्वामी के शिष्य थे उन्होंने कहा, 'हम मान पाने के लिए साधु कहाँ हुए हैं ?'

परमचैतन्यानन्द स्वामी की एकदम अन्तर्दृष्टि खुल गई । उन्होंने पूछा, 'बच्चे ! तुमने यह ज्ञान किससे पाया ?' बालमुकुन्द स्वामी ने उत्तर दिया, 'अपने गुरु गोपालानन्द स्वामी के पास से ।' यह सुनकर परमचैतन्यानन्द स्वामी ने कहा, 'कल गोपालानन्द स्वामी को मेरे पास भेजना ।'

अगले दिन गोपालानन्द स्वामी परमचैतन्यानन्द स्वामी के आसन पर आए । वे खाट पर बैठे थे, जबकि गोपालानन्द स्वामी नीचे चटाई पर बैठे । गोपालानन्द स्वामी ने सत्संग की महिमा और महाराज की सर्वोपरीता की सारी बातें कहीं । उनको सुनकर उनका अंतर शीतल हुआ । उन्होंने गोपालानन्द स्वामी से कहा, 'स्वामी कल फिर आना ।' अगले दिन जब गोपालानन्द स्वामी उनसे मिलने आए तो खाट वहाँ से हटा दी गई थी । दोनों चटाई पर एक-दूसरे के सामने बैठे । वे गोपालानन्द स्वामी की बातों से बहुत ही प्रभावित हुए । तीसरे दिन उन्होंने गोपालानन्द स्वामी को पुनः आने के लिए कहा । उस दिन गोपालानन्द स्वामी को खाट पर बैठाया और स्वयं नीचे बैठे । गोपालानन्द स्वामी की बातों से उनके अन्तर में शान्ति हो गई । उन्होंने गोपालानन्द स्वामी के चरणों में दंडवत् किया और कहा, 'मैं बारह वर्ष तक गुरु और सद्गुरु रहा, किन्तु सच्चा सत्संगी तो केवल आज ही बना । यदि बालमुकुन्द स्वामी और गोपालानन्द स्वामी से मेरी भेंट न हुई होती तो मुझमें आध्यात्मिक कसर रह जाती ।' कहकर वे बहुत बार प्रार्थना किया करते थे, 'हे महाराज ! अपने साधु से परिचित कराना ।'

गोपालानन्द स्वामी के समागम से परमचैतन्यानन्द स्वामी निर्मानी और सच्चे संत बने ।

२४. कीर्तन

राग : खमाच

रूडा लागो छो राजेन्द्र मन्दिर मारे आवता रे... रूडा.
जरकसीओ जामो हरि पहेरी, माथे बांधी पाघ सोनेरी,
गूढो रेंटो ओढी मन ललचावता रे... रूडा.
हैडे हार गुलाबी फोरे, चित्त मारुं रोकी राख्युं तोरे,
गजरा काजू बाजू मन मारे भावता रे... रूडा.
कनक छडी सुंदर कर लईने, गजगति चालो हळवा रहीने,
चित्तडुं चोरो मीठुं मीठुं गावता रे... रूडा.
प्रेमानन्दना नाथ विहारी, जाउं तारा वदनकमळ पर वारी,
हेते शुं बोलावी ताप शमावता रे... रूडा.

२५. अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी की बातें

[१]

'स्वामिनारायण हरे' कहकर स्वामी ने बात कहनी आरम्भ की : 'कल्याण के लिए कितनी ग़रज़ एवं लालच होनी चाहिए ? अकाल के समय भीमनाथ में अन्न माँगनेवालों की अपार भीड़ जुड़ती, उन्हें धक्के मारे जाते पर वे वहाँ से तनीक भी हटते नहीं, इतनी ग़रज़ होनी चाहिए ।'

गुणातीतानन्द स्वामी ने एक प्रश्न उपस्थित किया और उसका उत्तर एक ऐसे जाने-पहचाने प्रसंग से दिया जिससे तुरन्त समझ में आ जाए । यह भीमनाथ मन्दिर की घटना है, १८६९ के वर्ष में भीषण अकाल पड़ा था । लोग भूखों मर रहे थे । ऐसे में पशुओं का तो और भी बुरा हाल था । ऐसे बुरे समय में भीमनाथ मन्दिर में अन्नक्षेत्र खोला गया था । वहाँ थोड़ा सा अन्न एक कलछा दलिया (थूला) प्रत्येक व्यक्ति को दिया जाता था । उस थोड़े से भी अन्न को पाने के लिए, यह जानते हुए कि इसके सिवा कहीं भी कलछा अन्न नहीं मिलेगा, भीमनाथ मन्दिर में लोगों की भीड़ लग जाती । अन्न की आशा से वहीं पड़े रहते । कभी-कभी वे वितरण करनेवाले की ओर झपटते । तब उन्हें ऐसे दचके मारे जाते कि वे रेत में जा गिरते, फिर उठते और पंक्ति में खड़े हो जाते । एक कलछी भर दलिए के लिए वे वहीं पड़े रहते थे क्योंकि यह जानते थे कि दूसरे स्थान पर तो इतना भी अन्न नसीब होना संभव नहीं । धंधुका के निकट नील नदी के किनारे भीमनाथ मन्दिर में यह दशा कभी स्वामी ने देखी होगी । उसमें उन्हें एक आध्यात्मिक तत्त्व दिखाई दिया । इस भीड़ को एक कलछी दलिए की जैसी तीव्र इच्छा है ठीक उसी तरह हमें मोक्ष की ग़रज़ रखनी चाहिए । भगवान एवं साधु के सिवा कहीं भी मोक्ष प्राप्ति नहीं है ऐसा निश्चय करके सारा समय यहीं लगा देना चाहिए । यदि जीव में आत्म-कल्याण/मोक्ष के लिए ऐसी तीव्र इच्छा-ग़रज़ हो तो परम कल्याण हो जाएगा ।

श्रीजीमहाराज एक कहानी कहा करते थे : एक जंगल में एक सद्गुरु रहा करते थे । प्रतिदिन शहर से उन्हें पाँचसौ ग्राम चावल मिला करता था । उन सद्गुरु के जीवन का वही सहारा था । एक मुमुक्षु उनके पास गया उसने

शिष्य बनकर वहीं तपस्या करने देने की बिनती करी ।

सद्‌गुरु ने कहा, 'यहाँ हमारे लिए पाँचसौ ग्राम नित्य चावल आता है, मैं उसे ही रांधकर खाता हूँ ।'

वह मुमुक्षु तीव्र लगनवाला था । उसने कहा, 'गुरुजी, आप मेरी चिन्ता न करें, मैं भात के मांड से अपना काम चला लूँगा ।' जब गुरुजी ने यह बात सुनी तो उन्होंने फिर कह दिया कि रह जाओ ।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दूसरा मुमुक्षु आया । उसने भी गुरु के समागम एवं सेवा करने की इच्छा व्यक्त की । गुरुजी ने उसे सारी परिस्थिति समझाई कि यहाँ भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है । उसने पूछा : 'यह शिष्य कैसे निर्वाह करता है ?'

गुरुजी ने कहा, 'मांड पर निर्वाह करता है ।' उस आगन्तुक मुमुक्षु ने कहा, 'गुरुजी आप मेरी चिन्ता न करें । आप जिस जल से चावलों को धोते हैं, मैं उस धोवन को पी कर ही आपके समागम में रहूँगा । उसकी लगन देखकर उसे भी कह दिया कि तुम रह जाओ ।

कुछ दिन बाद तीसरा मुमुक्षु आ गया । गुरु ने सारी परिस्थिति की सच्चाई बता दी । तो भी उसने कहा, 'गुरुजी, भोजन कर लेने के पश्चात् जो चावल के दाने आपकी थाली में लगे रह जाएँगे उन्हें खाकर और आपके हाथ और बरतन धोने का जो पानी होगा उसे पीकर निर्वाह कर लूँगा । और आपकी सेवा करूँगा ।'

थोड़े दिनों के पश्चात् एक चौथा शिष्य आ गया । गुरुजी ने उससे कहा, 'तेरे जीवननिर्वाह के लिए यहाँ कुछ नहीं है । मांड, चावल के धोवन का पानी और बरतन साफ करने का पानी एक एक करके तीनों शिष्य ग्रहण करते हैं । अब मेरे पास कुछ नहीं है ।'

मुमुक्षु ने कहा, 'चावल धोते समय कुछ तो चावल या भूसा आप फेंकते ही होंगे मैं उन्हें बीनकर अपना निर्वाह कर लूँगा पर आप मुझे अपने पास रहने की अनुमति प्रदान करें ।' गुरुजी ने सोचा यह बड़ी लगन वाला है ।

शिष्यों ने अपने गुरु की महिमा जान ली थी, उनमें मोक्ष के लिए तीव्र ग़रज़ थी । जिस किसी में भी इन शिष्यों की तरह तीव्र चाव हो वह दिन प्रति दिन सत्संग में आगे बढ़ता ही जाता है ।

[२]

'स्वामिनारायण हरे' कहकर स्वामी ने बात आरम्भ की :

'हीरा किसी रीति से टूटता नहीं परन्तु खटमल के रक्त से टूट जाता है । इसी प्रकार वासना किसी भी रीति से मिटती नहीं किन्तु सत्पुरुष जो कहें वह किया जाए, उनके गुण ग्रहण करें और उनकी क्रिया से प्रेम हो तो वासना मिट जाए । सौभरि आदि अनेक देव ने कितने अधिक साधन किए और वे कितने ज्ञानी थे ? परन्तु वासना मिटी नहीं ।'

वासना का अर्थ है इच्छा-तृष्णा । उसे मिटाना बहुत कठिन है । गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं कि वासना तप और पुरुषार्थ से मिटती नहीं । हीरा एक पत्थर है और मूल्यवान है पर उसे तोड़ना या काटना कठिन होता है किन्तु खटमल का रक्त जो जलरूप है उसे लगा दिया जाय तो सरलता से कट जाता है । इसी तरह वासना भी बड़े बड़े उपायों से नहीं मिटती । तप का बल बड़ा बताया गया है किन्तु उससे भी नहीं मिटती । सारे असुरों ने तप किया है पर वासना नहीं मिटी । वही भक्ति से सरलतापूर्वक मिट जाती है । सत्पुरुष की आज्ञा मानना, उनके गुण ग्रहण करना, उनकी क्रिया में दोष न देखना, भक्ति है ।'

जूनागढ में एक नागर ब्राह्मण रहता था । बहुत अच्छा स्वादिष्ट भोजन करने की उसकी बड़ी वासना थी ।

रसोइया तरह तरह के व्यंजन बनाता यदि भोजन के स्वाद में कोई कमी उसे लगे तो थाली फेंक देता, क्रोध करता और घर में गाली बकता । घर के सारे लोग उसकी जीभ की लोलुपता से तंग आ गए । जब तक वह जिम न लेता, परिवार वालों के जी टंगे रहते । यह नागर ब्राह्मण प्रतिदिन मन्दिर जाता पर कथावार्ता न सुनता । दूर से नमस्कार कर लौट जाता । घर के लोग कहते मन्दिर जाता है किन्तु चटोरा है, नि:स्वादी नहीं बना अभी तक ।

तंग आकर उसकी माँ ने गुणातीतानन्द स्वामी के सामने सारी समस्या एक हरिभक्त के माध्यम से रखी ।

अगले दिन जब वह नागर ब्राह्मण मूर्ति को प्रणाम कर लौट रहा था पीछे से गुणातीतानन्द स्वामी ने पुकार कर वापस बुलाया और कहा कि 'बैठकर कथावार्ता सुनो ।' कथा समाप्ति पर स्वामी भोजन के लिए उठे, तो

यह भक्त जिज्ञासावश रसोई में यह देखने गया कि देखें स्वामी क्या खाते हैं ! उसने सोचा स्वामी तो इतने बड़े मन्दिर के महंत हैं तो स्वामी अवश्य ही तरह तरह के स्वादिष्ट पकवान खाते होंगे ।'

वह स्वामी को दूर से देख रहा था । बालमुकुन्द स्वामी ने स्वामी के पत्तर में रोटले का चूर्ण परोसा और ऊपर से छाछ डाली । इस हरिभक्त ने समझा दूधपाक अथवा दूध होगा । स्वामी ने अपनी तुम्बी से थोड़ा जल छिड़का और खाने लगे । थोड़ी ही देर में उनकी दृष्टि खड़े हुए उस भक्त पर पड़ी, दृष्टि पड़ते भक्त के मन में क्या है, यह उन्होंने पढ़ लिया ।

वह हरिभक्त भी अपने को न रोक सका । स्वामी के पाँव छूकर सामने बैठकर पूछने लगा, 'आप क्या खा रहे हैं ?' उसने दूधपाक सोचा था अत: उसमें पानी का छींटा देने से उसके मन भ्रम पैदा हो गया था ।

स्वामी ने कहा, 'मैं रोटले का चूर्मा और छाछ खा रहा हूँ ।' उस नागर भक्त को बहुत आश्चर्य हुआ कि ओह ! इतने बड़े मन्दिर का महन्त और इतना बड़ा आदमी रोटला और छाछ खाता है ! स्वामी स्वाद से ऊपर हैं नि:स्वादी हैं । मुझ में ऐसा गुण कैसे आए ? इस गुण के लेते ही उसके अन्तर का परिवर्तन हो गया ।

आज वह घर में थोड़ा देर से भोजन करने बैठा । सब घबरा रहे थे कि अभी वह भड़केगा । परन्तु उनको देखकर आश्चर्य हुआ कि उसे जो परोसा गया वह उसने चुपचाप बैठकर खा लिया । उसने स्वाद को जीत लिया नि:स्वादी हो गया और पक्का सत्संगी हो गया ।

इसलिए, श्रीजीमहाराज ने कहा है कि यदि कोई कुत्ते के समान कामी हो, किन्तु इस संत को अकामी के रूप में देखे तो वह भी अकामी हो जाएगा । इस संत को निर्दोष समझें तो हम भी निर्दोष हो जाएँगे । सत्पुरुषों के गुण अपने में आएँ और अपनी क्रिया में उन्हें उतारें तो वासना तुरन्त मिट जाएगी । सौभरि आदि ऋषिमुनियों ने बहुत तप किया और अपना शरीर भी सुखा दिया किन्तु उनकी वासना मिटी नहीं । वासना को मिटाने का सबसे श्रेष्ठ साधन संतों का संग है ।

[३]

'स्वामिनारायण हरे' स्वामी ने बात आरम्भ की :

'अपने अन्दर खोज कर देखो, अगर हजार रुपये मिलें उसका क्या फल है, लाख रुपये मिलें उसका क्या फल है और करोड रुपये मिलें तो उसका क्या फल है ? क्योंकि वास्तव में मनुष्य को केवल एक या दो रोटी खाने के लिए चाहिए । अत: अपने अन्दर में विचार करो इच्छाओं पर संयम करना सीखो ।'

इस बात के द्वारा स्वामी ने हमें समझाया कि व्यक्ति को चाहिए तो दो रोटी परन्तु रुपये कमाने की तृष्णा उसकी बढ़ती ही जाती है । वहीं स्वामी का प्रश्न है कि लाख करोड़ भी मिल गए तो क्या फल है उस रुपये का ? क्योंकि खा तो पाएगा नहीं, मरने पर साथ ले जा सकता नहीं, खाली ही हाथ जाएगा, तो क्या लाभ हुआ ?

वसो के वाघजीभाई गुणातीतानन्द स्वामी के अनन्य शिष्य थे । उनके हृदय में अखंड शान्ति बनी रहती थी । उनके पिता तुलसीभाई का तम्बाकू का बड़ा व्यापार था, इसलिए उनके पास जूनागढ आने का समय ही नहीं था । उन्होंने स्वामी को वसो ही पधारने का निमंत्रण दिया । वे कहा करते थे, 'कृपया स्वामी ! यहाँ दो दिन नहीं चार दिन ठहरिए, नहीं नहीं, चार दिन नहीं, आठ दिन ठहरिए, परन्तु कुछ ऐसा करिए कि मेरा पुत्र वाघजी जिस शान्ति का अनुभव अपने अन्तर में करता है मैं भी उसी शान्ति और आनन्द का अनुभव करूँ ।'

किन्तु तुलसीभाई को स्वामी के पास बैठने का कभी समय ही नहीं मिला । सुबह को दर्शन करके वे दुकान पर चले गये और शाम को देर से लौटे । वे अपने व्यापार में इतने डूब गए थे कि स्वामी के पास आकर बैठने का उनके पास समय ही नहीं था ।

तीन दिन बीत गए, परन्तु तुलसीभाई स्वामी के समागम, कथावार्ता का लाभ नहीं ले सके । तो भी वे यही कहते रहते शान्ति दो, शान्ति दो । चौथे दिन स्वामी ने उन्हें अपने पास बैठाया और पूछा, 'लाख मन लोहे के पिंड को तपाकर लाल किया गया हो और फिर एक या दो घड़े पानी उसके ऊपर डाले तो क्या वह ठंडा हो जाएगा ?'

तुलसीभाई ने कहा, 'नहीं, स्वामी ।'

तब स्वामी ने कहा, 'यदि ऐसे पिंड को गंगा नदी की धारा में पन्द्रह

दिन रखें, तो हवेली की ऊँचाई तक पानी उछलेगा । तब जाकर वह ठंडा होगा । इसी तरह तुमने इतने वर्षों तक व्यापार किया है इससे तुम्हारा हृदय तप गया है । दर्शन या वार्ता की दो बूँदों से तुम शान्ति और आनन्द का कैसे अनुभव करोगे ? लाख रुपया व्यय करने पर भी अन्त:करण का अज्ञान नहीं जाता है । अंत:करण के इस अज्ञान को तो तुम मेरे जैसे साधु के समागम से दूर कर सकते हो । इस तरह से स्वामी ने प्रेरणादायक बहुत बातें करीं । उसके पश्चात् तुलसीदास जूनागढ जाते और स्वामी का समागम करते । समागम से उनके अन्तर में शान्ति आ गई । अत: संत-समागम करके व्यक्ति संसारी इच्छाओं को अपने अन्दर से निकाल सकता है, अंतर में शांति का अनुभव कर सकता है ।

[४]

'स्वामिनारायण हरे' कहकर स्वामी ने बात आरम्भ की :

'जैसे गाय बछड़े के लिए दूध थन में भर देती है, इसी तरह यदि शिष्य अपने गुरु को अपना मन समर्पित कर दे तो वे उसके अन्त:करण के अज्ञान को मिटा देंगे, परन्तु इसके बिना नहीं मिटेगा ।'

सत्यकाम जाबालि ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास गया । गुरु ने उसके कुल, गोत्र आदि के बारे में पूछा । उसने कहा, 'मैं नहीं जानता ।' फिर वह अपनी माँ से पूछने लगा । किन्तु उसकी माँ ने कहा, 'तेरे पिता नहीं है ।' जाबालि गुरु के आश्रम में लौटकर आया और गुरु को सब सच्ची बातें बता दीं । गुरु ने कहा, 'तुमने मेरे से कुछ नहीं छुपाया है इसलिए तुम ब्राह्मण हो ।' ऐसा कहकर उसे आश्रम में रहने की आज्ञा दे दी ।

एकबार गुरु ने कहा, 'इन गायों को कौन चरवाएगा ? एक गाय से चारसौ गायें हो जाएँ तब तक चरवानी होंगी । तब ही मैं ज्ञान दूँगा ।' यह सुनकर अन्य शिष्यों ने कहा, 'हम यहाँ ज्ञान प्राप्त करने आए हैं न कि गाय चराने ।' किन्तु सत्यकाम जाबालि गुरु की आज्ञा सिरोधार्य कर गायों को चराने लगा ।

गुरु की आज्ञानुसार वह गायों की सेवा करने लगा । नित्य सबेरे गायों को जंगल में चराने ले जाता, पानी पिलाता, घास डालता, इस तरह सब प्रकार से सेवा करता । गायों की संख्या बढती गई । गायों की सेवा करते

करते वह वृक्षों, पत्तियों, पशुओं, पक्षियों आदि से बहुत कुछ सीखने लगा । जब गायों की संख्या चारसौ हो गई, वह गुरुजी के पास गया । उस समय उसके चेहरे पर ज्ञानप्रकाश तीव्र हो रहा था ।

गुरुजी ने उसकी ओर अपनी कृपादृष्टि करी और कहा, 'तुमने सब ज्ञान प्राप्त कर लिया है । आज से तुम्हें ज्ञान सिद्ध हो गया है ।' ऐसा कहकर हृदय से आशीर्वाद दिए । गुरु के आशीर्वाद से उसमें ब्रह्मज्ञान स्फुरित हो गया ।

स्वामी ने कहा कि ऐसी बातें तभी निकलती हैं, जब गाय के थनों से बछड़ा लगता है और उसके थनों से दूध आ जाता है यानि जब शिष्य गुरु के हृदय में प्रेम को छलका देता है । बछड़े को देखकर गाय के आँचल में से दूध की धारा छूटती है, कारण माता को अपने बछड़े से अतिशय प्रेम होता है ।

इसी तरह जो संशय रहित होकर अपने मन को गुरु को समर्पित कर देता है और गुरुवचनों का पालन नि:संकोच करता है, तब गुरु उसके अज्ञान को दूर कर देते हैं । गुरु की कृपादृष्टि का अधिकारी हो जाने के पश्चात् शास्त्रज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती ।

[५]

'स्वामिनारायण हरे' कहकर स्वामी ने बात प्रारम्भ की :

'विषय के मार्ग में अंधा हो जाना, बहरा हो जाना, लूला हो जाना परन्तु कभी आसक्त न होना ।'

स्वामी यहाँ कहते हैं कि विषयों का मार्ग दुःखरूप है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पंचविषय जीव के अनादि काल से शत्रु हैं । एक-एक विषय एक-एक प्राणी को अपनी ओर आकर्षित करता है और प्राणी के प्राण हर लेता है ।

१. शब्द : शिकारी हिरण को मारने के लिए बंसी बजाता है । जब शिकार यानी हिरण बंसी की धुन में मस्त हो जाता है, तब वह एक स्थान पर खड़ा हो जाता है । तब शिकारी बाण मारकर उसे मार देता है ।

२. स्पर्श : हाथी को पकडने के लिए बड़े-बड़े गड्ढे खोदे जाते हैं, उसे डालियों और पत्तों से ढक देते हैं । तब वे गड्ढे के दूसरी ओर एक नकली हथनी को बनाकर खड़ा कर देते हैं । स्पर्श के लोभ से हाथी वहाँ दौड़कर आता है और गड्ढे में गिर जाता है । फिर उसे बंदी बना लिया जाता है ।

३. रूप : पतंगा दीपक की लौ से आकर्षित होता है और उसमें जलकर मर जाता है ।

४. रस(स्वाद) : मच्छली को पकड़ने के लिए मछियारा काँटे में रोटी का टुकड़ा अटकाता है । मच्छली उस रोटी की ओर आकर्षित होकर काँटे में फँस जाती है और उसे अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं ।

५. गंध : भ्रमर कड़ी लकड़ी को भी खा जाता है, किन्तु वही कमलपुष्प की भीनी गंध से आकर्षित हो जाता है और उसकी गंध से इतना आसक्त हो जाता है कि शाम को कमल पुष्प की पंखुडियाँ बंद हो जाती हैं और वह उसी में बंद हो जाता है । बाद में हाथी आता है और अपनी सूँड से उस कमलपुष्प को तोड़कर अपने पैरों के तले रौंद देता है । बेचारा भँवरा मर जाता है । इस रीति से कोई न कोई विषय में प्राणी आसक्ति करके अपनी मृत्यु को बुलाता है । बाद में मनुष्य देह धारण करके हम पाँचों विषयों से प्रेम करते हैं तो बंधन क्यों न पैदा हो ? वे हमें क्यों न बाँध लें ।

इसलिए, स्वामी हमें अंधा और बहरा होने के लिए कहते हैं, जिसका

अर्थ है कि हम पंचविषयों की ओर से अपनी इन्द्रियों की वृत्तियों को खिंच लें । जगत का रूप दिखाई दे तो आँख की वृत्ति खिंच ले । उसी तरीके से शब्द में से काम की, स्वाद में जीभ की इस तरह सब इन्द्रियों की वृत्ति खिंच लें । नेत्र से दूसरे का रूप देखना हराम है । मन से दूसरे का संकल्प करना हराम है । इसी रीति से सावधान होकर इन्द्रियों के भोगों को जो हराम कर लेता है यानि इन्द्रियों पर नियंत्रण कर लेता है तभी ब्रह्मस्थिति प्राप्त होती है और पुरुषोत्तम के दर्शन करने की योग्यता आती है ।

२६. स्वरूपानन्द स्वामी

श्रीजीमहाराज की संत मण्डली में उत्तर भारत के एक प्रभावशाली बुद्धिमान संत थे । जब उन्होंने सुना कि देश के पश्चिम भाग में जीवनमुक्त प्रगट हुए हैं तो उनके हृदय में शान्ति छा गई । वे गुजरात में आकर श्रीजीमहाराज से मिले । दीक्षा ली और स्वरूपानन्द नाम पड़ा ।

स्वरूपानन्द स्वामी को श्रीजीमहाराज ने मांगरोल में समाधि लगवाई । समाधि में वे अक्षरधाम गए और महाराज को दिव्य सिंहासन पर बैठे देखा । चारों ओर से अनन्त मुक्त जीव उन्हें घेरे हुए थे । जब उन्होंने समाधि में श्रीजीमहाराज की दिव्य शक्ति के दर्शन किये तो उन्हें निश्चय हो गया कि महाराज तो सर्वोपरी, सर्व अवतारों के अवतारी पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ।

स्वरूपानन्द स्वामी को जब महाराज के पुरुषोत्तम होने का दृढ़ निश्चय हो गया तब स्वरूपानन्द स्वामी का सम्पूर्ण जीवन परिवर्तित हो गया । देह के प्रति अनासक्ति, आत्मनिष्ठा, पंचविषयों से वैराग्य आदि अनेक गुण उनमें आ गए । जब वे बीमार पड़े हुए थे महाराज ने कहा, 'अरे ! आपको दर्द का कष्ट बहुत उठाना पड़ा ?'

स्वरूपानन्द स्वामी ने कहा, 'महाराज ! टट्टू दुबला है किन्तु सवार चुस्त है ।' ऐसी उनकी आत्मनिष्ठा थी । वे देहभाव को जानते ही नहीं थे क्योंकि वे हमेशा देहभाव से ऊपर रहते थे ।

एकबार स्वरूपानन्द स्वामी गाँवों में विचरण करके लौटे । श्रीजीमहाराज ने उनसे पूछा, 'विचरण के समय तुम्हें कैसे मनुष्य मिले ?'

स्वामी ने उत्तर दिया, 'अभी अभी मैंने नीम के वृक्ष के नीचे बैठा एक

मनुष्य देखा है, और कहीं भी मैंने मनुष्य नहीं देखा ।' जो संत वहाँ उपस्थित थे वे उनके शब्दों के महत्त्व को न समझ पाए । इसलिए उन्होंने पूछा, 'जब तुम्हें मनुष्य ही नहीं मिला तो तुमने कल्याण किसका किया ?'

तब महाराज ने कहा, 'दूसरे तो नियम धारण करवाकर, वर्तमान का पालन करवाकर कल्याण करते हैं, परन्तु स्वरूपानन्द स्वामी के तो मात्र दर्शन करने से कल्याण होता है ।'

एकबार स्वरूपानन्द स्वामी ने महाराज से पूछा, 'सत्संगी का कैसा कल्याण होता है ?' श्रीजीमहाराज ने उत्तर दिया, 'जैसा बड़े-बड़े अवतारों का होता है वैसा सत्संगी का कल्याण होता है ।' इस पर स्वरूपानन्द स्वामी बोले, 'गुरुदेव ! तब तो बहुत महान कल्याण होता है ।' उन्हें ऐसा महाराज की सर्वोपरीता में दृढ़ विश्वास था, वे महाराज के सामने भी उनकी सर्वोपरीता की बात कहने में संकोच नहीं करते थे ।

एकबार महाराज ने स्वरूपानन्द स्वामी से कहा, 'जब एक नया राजा सिंहासन पर आसीन होता है, तब सभी बंदियों को मुक्त कर दिया जाता

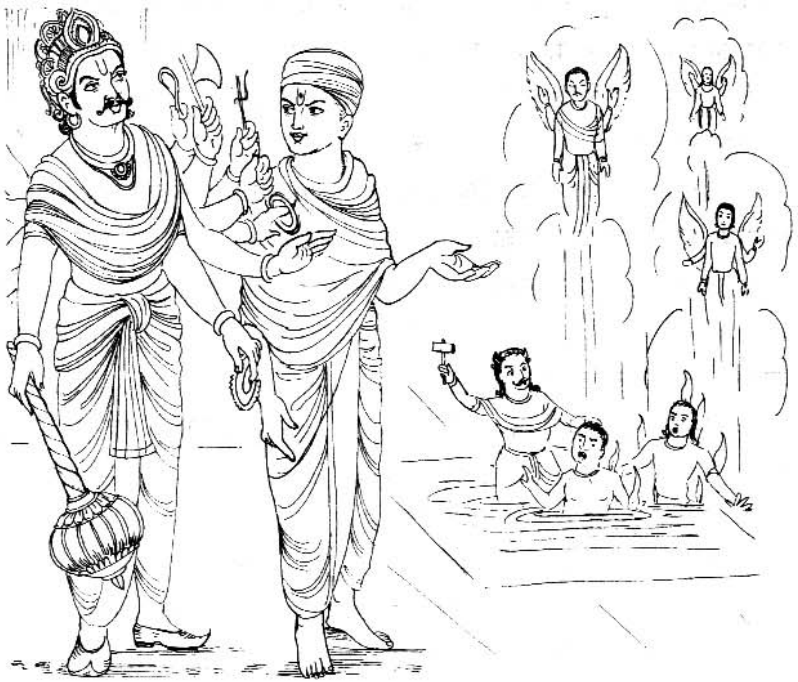

है । उसी प्रकार से मैं नरक में कष्ट पानेवाले असंख्य जीवों को मुक्ति दे देना चाहता हूँ ।'

श्रीजीमहाराज की आज्ञानुसार स्वरूपानन्द स्वामी समाधि में धर्मराज के पास गए । धर्मराज ने अपने सिंहासन बैठाकर उनकी स्तुति करी । स्वरूपानन्द स्वामी ने धर्मराज से कहा : 'मुझे नरक दिखाओ ।' जब वे नरक के विभिन्न कुण्डों को देखते हुए जा रहे थे, कुंभीपाक नरक आया । स्वरूपानन्द स्वामी ने जीवों के कष्ट की वेदना भरी वाणी सुनी, उन्हें उन पर दया आ गई । उन्होंने 'स्वामिनारायण, स्वामिनारायण' मंत्र का जाप प्रारम्भ किया । 'स्वामिनारायण' शब्द को सुनकर उसके प्रताप से सब जीवों ने चतुर्भुज देह धारण की और भूमापुरुष के लोक में वे चले गए ।

श्रीजीमहाराज ने सत्संग के प्रचारार्थ, संतों को देश के विभिन्न भागों में भेजा । स्वरूपानन्द स्वामी उस समय जगन्नाथपुरी तक सत्संग का प्रचार करते हुए गए । जगन्नाथपुरी में उन्होंने एक व्यक्ति को अपने इकलौते गुणवान बेटे के शव के निकट रोते हुए देखा । उस गुणवान बालक को देखकर स्वरूपानन्द स्वामी को दया आ गई । ब्राह्मण के पास आकर उन्होंने पूछा, 'इतनी अधीरता से तुम क्यों रो रहे हो ? क्या तुम्हारा पुत्र वास्तव में मर गया है ?' इतना कहकर उन्होंने श्रीजीमहाराज का स्मरण किया, श्रीजीमहाराज के प्रताप से ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो गया । ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया । ब्राह्मण ने नगर के राजा से इस घटना का वर्णन किया, किन्तु तब तक स्वरूपानन्द स्वामी वहाँ से बाहर आ चुके थे ।

स्वरूपानन्द स्वामी महाराज की मूर्ति का अखंड दर्शन करते थे । वे तीनों देह और तीनों अवस्थाओं से ऊपर थे । इतना होने पर भी जब वे बीमार पड़े तो उनके अन्तर में अशान्ति रहने लगी । अत: श्रीजीमहाराज ने उनसे कहा, 'पर्वतभाई के पास जाओ, शान्ति हो जाएगी ।' वे अगतराई गए और दो दिन पर्वतभाई के साथ रहे, उन्हें बातें भी सुनाईं परन्तु शान्ति न मिली, इसलिए वे गढ़पुर लौट आए ।

श्रीजीमहाराज ने उनसे कहा, 'मैंने तुम्हें पर्वतभाई के पास बातें सुनाने के लिए नहीं, उनसे बातें सुनने के लिए भेजा था ।' इसलिए स्वरूपानन्द स्वामी अगतराई लौट गए । विनम्रतापूर्वक पर्वतभाई से बातें सुनाने को कहा ।

पर्वतभाई ने कहा, 'दादाखाचर की छत की जलकियों (नरियों) का ध्यान करो ।' बाद में उन्हें अपनी भूल समझ में आई । यद्यपि वे मूर्ति का अखंड दर्शन करते रहते थे इस कारण श्रीजीमहाराज की प्रगट मूर्ति के दर्शन और स्पर्श की तीव्र इच्छा उनमें नहीं थी । भगवान की मूर्ति का अखंड दर्शन होते हुए भी प्रगट भगवान की नौ प्रकार की भक्ति हमें करनी चाहिए, लीला चरित्रों का गान करना चाहिए, जो ज्ञान का और अखंड मूर्ति देखने का फल है । इसके पश्चात् स्वरूपानन्द स्वामी ने यह बात अपने अन्तर में धारण करी तो उन्हें शान्ति हो गई ।

२७. धर्म

शिक्षापत्री में श्रीजीमहाराज ने कहा है, 'श्रुति, स्मृति द्वारा प्रतिपादित जो सदाचार है उसे धर्म समझो ।' श्रुति और स्मृति में मनुष्यमात्र के करने योग्य अर्थात् विधेय और न करने योग्य यानी निषेध, इन दो मार्गों का वर्णन किया गया है । विधि-निषेध का दृढ़ता से पालन करना और वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से मनुष्य को इस लोक में सुख, वैभव, कीर्ति यश मिलता है और देह छूट जाने के पश्चात् देवलोक की भी प्राप्ति होती है । परन्तु इससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, इससे जन्म-मरण का चक्कर मिटता नहीं । कारण यह कि पुण्य का बटुआ खाली हो जाने पर (फल भोग लेने पर) देवलोक से पुनः पृथ्वी लोक पर आना पड़ता है ।

तब वह धर्म कौन सा है जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है ? इस धर्म का विस्तार से वर्णन वचनामृत में मिलता है । सदाचार का अर्थ है धर्म,सत यानि परब्रह्म, सत का अर्थ ब्रह्म भी है । ब्रह्म और परब्रह्म का नित्य अपने जीवन में अनुसरण करना सदाचार है, उसे ही धर्म कहा जाता है । श्रीजीमहाराज के वचनानुसार वह परब्रह्म परमात्मा का धारक भगवत्स्वरूप संत पृथ्वी पर विचरण कर रहे हो उनके आचरण का अनुकरण करना भी धर्म है । उसके आचरण के अनुसरण से मोक्ष हो जाता है । ऐसा संत शिक्षापत्री में निर्धारित सदाचार नियमों के अनुसार अपना जीवन जीता है और श्रीजीमहाराज की आज्ञाओं का भी पालन करता है । इसलिए हमें भी शिक्षापत्री में निर्धारित नियमों का पालन करना चाहिए । ऐसा करने से हमारे

अन्तर में से सभी अधर्मरूप संकल्पों का नाश हो जाता है और हम धर्म के मार्ग पर चलने लगते हैं ।

ज्ञान

ज्ञान का अर्थ है जानना । किन्तु क्या जानना ? जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, परब्रह्म के स्वरूप को अच्छी प्रकार से जानना ज्ञान है । देह और आत्मा को पृथक् पृथक् जानना यह ज्ञान का आधार है । देह और आत्मा के गुण पृथक् पृथक् है । देह जड़, मिथ्या, दुःखरूप और नाशवान है । आत्मा चैतन्य, सत्य, सुखरूप और अविनाशी है । देह के गुण आत्मा पर आरोपित नहीं करना चाहिए इसी तरह आत्मा के गुण देह पर आरोपित नहीं करना चाहिए । जब हम आत्मा को देह से पृथक् मानते-समझते हैं तब सुख-दुःख, भूख-प्यास, मान-अपमान इत्यादि देह के गुणों से ऊपर उठ जाते हैं या वे मिट जाते हैं । ज्ञानी के ये प्राथमिक लक्षण हैं ।

इसके अतिरिक्त पाँच अनादि तत्त्व जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म के यथार्थ स्वरूपों को जानना-समझना अनिवार्य है । जीव अल्पज्ञ, अणु समान सूक्ष्म, चैतन्यरूप और समग्र देह में व्याप्त कर फैलकर रहता है । अहंता ममता रूपी माया जड़ और सत, रज और तम इन तीन गुणों से युक्त है, अंधकाररूप है । भगवान के भजन में विघ्न डालनेवाली है । ईश्वर सर्वज्ञ, चैतन्यरूप और महत् है । ईश्वर के ऊपर माया का आवरण है । ईश्वर अनन्त हैं । अक्षरब्रह्म निर्विकार है और कूटस्थ है स्थिर है, एक और अद्वितीय है । यह अक्षरब्रह्म साकाररूप में पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में अखंड रहता है । यही अक्षरब्रह्म धाम के रूप में अति तेजस्वी, जीव, ईश्वर और माया का प्रकाशक, साधन और प्रेरक है । अक्षरधाम में भगवान पुरुषोत्तम तथा अनन्तकोटि मुक्त निवास कर रहे हैं । परब्रह्म पुरुषोत्तम, जीव, ईश्वर, माया और ब्रह्म के नियंत्रक एवं आधार हैं । सर्व दोषों से रहित और अनन्त कल्याणकारी गुणों से युक्त हैं । इसी रीति से श्रीजीमहाराज को सर्व अवतारों का अवतारी, सर्वोपरी समझना यह ज्ञान है । अपनी आत्मा को तीनों शरीरों, तीनों अवस्थाओं से पृथक् ब्रह्मरूप मानकर पुरुषोत्तम नारायण की भक्ति करना यह ज्ञान है ।

वैराग्य

भगवान के अतिरिक्त किसी भी वस्तु में प्रेम या आसक्ति का न होना

वैराग्य कहलाता है । पृथ्वी और प्रकृति पुरुष के लोक के मध्य जो फैला हुआ वैभव है, भोग है, सुख है उसमें आसक्ति न हो वह वैराग्य । अपनी देह, देह के नाते; सगे-सम्बंधी तथा जगत के समस्त विषय-वस्तुओं में यदि दोष दिखाई दें तो उसमें तुम्हारी सहज ही अरुचि हो जाएगी । यह अरुचि यदि दृढ हो जाए, तो इसी को वैराग्य कहते हैं । जब हम यह अनुभव करते हैं कि यह देह और यह जगत नाशवान है, दुःखरूप है तो उसमें मोह नहीं होता । ऐसा ज्ञान हो जाए तो वैराग्य पेदा हो जाता है । वैराग्य से सर्व पदार्थों में से प्रीति टूट जाती है और भगवान से दृढ प्रीति हो जाती है । हमारा स्नेह यदि नश्वर वस्तुओं से हो जाए तो वह अकल्याणकारी है और वही राग यदि परमात्मा से हो जाए तो परम कल्याणकारी बन जाता है । राग दोनों तरफ नहीं होता । राग एक ही नाव में पैर रखता है । जब वह राग परमात्मा से हो जाता है तो वैराग्य कहलाता है । मोक्ष पाने के लिए वैराग्य आवश्यक साधन है ।

भक्ति

श्रीजीमहाराज अनन्त दिव्य कल्याणकारी गुणों के भंडार हैं और अनन्त ऐश्वर्ययुक्त उनके स्वरूप में माहात्म्यज्ञान (महिमा सहित ज्ञान) सहित स्नेह-प्रेम को भक्ति कहते हैं । भागवत में नौ प्रकार की भक्ति वर्णित है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं सख्यं दास्यमात्मनिवेदनम् ॥

कथा सुनना, कीर्तन गाना, स्मरण करना, भगवान के चरणकमल की सेवा करना, अर्चन करना, वंदन करना, दासभाव से सेवा करना, सखाभाव से प्रेम करना और आत्म-समर्पण करना ये नौ प्रकार की भक्ति कही है । हमारा भक्ति सम्प्रदाय है । भक्ति एक साधन है जिसका कोई भी सरलता से अभ्यास कर सकता है । ज्ञान, वैराग्य, तप, योग, यज्ञ, यागादि वर्तमान समय में सिद्ध होना बहुत कठिन है । यदि आम बोया हो तो उसका पेड़ बनेगा और छाँव देगा, लकड़ी आदि देगा । परन्तु उस आम के वृक्ष की पूर्णता तब होगी जब वह फल दे । ठीक इसी प्रकार समस्त गुण व्यर्थ हैं, जब तक भक्ति न हो । भक्ति के बिना मोक्ष नहीं होता । श्रीजीमहाराज अक्षरधाम में दिव्य ऐश्वर्य सहित विराजते हैं । वे ही भगवान अपनी निज इच्छा से इस

लोक में मनुष्य रूप में अपने पार्षद, मुक्तों और ऐश्वर्य के साथ प्रगट हुए हैं । उनके इस स्वरूप की महिमा समझकर और उनके मनुष्य रूप में दिव्यता देखना-समझना, उन्हें नौ प्रकार से प्रीतिपूर्वक भजना भक्ति है । अपने में उनको अखंड धारण करनेवाले या जिनका अखंड समागम रहता है, जो इस धरती पर विचरण करते हैं ऐसे प्रगट गुणातीत सत्पुरुषों को प्रीतिपूर्वक भजना भक्ति है । ऐसी भक्ति से मोक्ष प्राप्त होता है ।

२८. सुभाषित

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १ ॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन (काम) ये चार लक्षण तो मनुष्य और पशु में समान हैं । धर्म ही मनुष्य में विशेष लक्षण है । धर्म के बिना मनुष्य भी पशु के समान है । (१)

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति ।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ २ ॥

अन्य स्थान में जो पाप किए हों वे तीर्थक्षेत्र में जाने से नष्ट हो जाते हैं किन्तु तीर्थक्षेत्र में किए गए पाप सब वज्रलेप बन जाते हैं यानि उनसे छुटकारा नहीं मिलता । श्रीजीमहाराज कहते हैं कि अन्य स्थानों पर किए गए पापों का मोचन संत का संग करने से हो जाएगा किन्तु जो संत के प्रति पाप करते हैं वे पाप वज्रलेप हो जाते हैं यानि पक्के हो जाते हैं उनका फल भोगना ही पड़ता है । अर्थात् संत की कृपा के बिना दूसरे किसी साधन से ये पाप कटते नहीं हैं । (स्कंदपुराण) (२)

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धि सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ ३ ॥

जिस पुरुष की वात, पित्त और कफधारी देह के प्रति आत्मबुद्धि है (मैं यही हूँ) और स्त्रीपुत्रादिक में ममत्वबुद्धि है और भूमि के विकारों से निर्मित प्रतिमा आदि में पूज्यबुद्धि है तथा जल में तीर्थबुद्धि है कि यह जल शुद्ध करने वाला है और उस पुरुष को इस प्रकार की आत्मबुद्धि, ममत्वबुद्धि, पूज्यबुद्धि एवं तीर्थबुद्धि भगवान के एकान्तिक संत में अगर नहीं है तो उसे

बैल अथवा तो पशुओं में कनिष्ठ गधा समझना चाहिए । (३)

(श्रीमद् भागवत १०-८४-१३)

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥४॥
क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥५॥

इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करने से मनुष्य की उनमें आसक्ति हो जाती है । आसक्ति से काम (कामनाएँ) और कामनाओं के पूरा न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है ।

क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है और मोह से स्मृति में भ्रम पड़ जाता है । स्मृति भ्रम से बुद्धि का नाश और बुद्धिनाश से मनुष्य का पतन हो जाता है । (४, ५) (गीता २ : ६२-६३)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥६॥

जो मनुष्य मान और मोह से रहित है, जिसने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है । जो कामनाओं को छोड़कर आत्मस्वरूप के चिन्तन में रहता है । जो सुख-दुःख रूपी द्वंद्वों से परे है, ऐसा विवेकी जन अविनाशी पद यानि अक्षरधाम को पाता है । (६)

धर्मो ज्ञेयः सदाचारः श्रुतिस्मृत्युपपादितः ।
माहात्म्यज्ञानयुग्भूरि स्नेहो भक्तिश्च माधवे ॥७॥

श्रुति-स्मृति में प्रतिपादित सदाचरण का पालन ही धर्म है । माहात्म्यज्ञान सहित भगवान से प्रेम ही भक्ति है । (७) (शिक्षा. १०३)

वैराग्यं ज्ञेयमप्रीतिः श्रीकृष्णेतरवस्तुषु ।
ज्ञानं च जीवमायेशरूपाणां सुष्ठु वेदनम् ॥८॥

भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु में राग न होना ही वैराग्य है । जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म के स्वरूप का बोध ही ज्ञान है । (८)

(शिक्षा. १०४)

गुणिनां गुणवत्तायाः ज्ञेयं ह्येतत्परं फलम् ।
कृष्णे भक्तिश्च सत्सङ्गोऽन्यथा यान्ति विदोऽप्यधः ॥९॥

जो गुणवान पुरुष है उसके गुणवान होने का परम फल है कि वह श्रीकृष्ण भगवान की भक्ति करता है और सत्संग करता है । भक्ति और सत्संग के बिना तो विद्वान का भी पतन हो जाता है । (९) (शिक्षा. ११४)

२९. गोरधनभाई

एकबार गोरधनभाई घर से निकलकर तालाब पर कपड़े धोने जा रहे थे । उनकी वृत्ति हमेशा महाराज में लगी रहती थी । उन्होंने कपड़ों के स्थान पर खाट पर सो रहे अपने छोटे बालक को उठाकर कंधे पर डाल लिया, और माना कि धोने के कपड़ों की पोटली है । तालाब की ओर जाते हुए, 'स्वामिनारायण' 'स्वामिनारायण' मंत्र जपते जा रहे थे । जब वे बाजार के मध्य से जा रहे थे बालक की नींद खुल गई और वह रोने लगा । गोरधनभाई तो अपने भजन में मस्त थे उनको तो बच्चे के रोने की आवाज भी नहीं सुनाई दी ।

दूसरे आदमी बालक का रोना सुन रहे थे । उनमें से एक ने कहा, 'ओ गोरधन ! क्या तू पागल हो गया है ? जो बालक को तूने कंधे पर उलटा लटका रखा है ! यह कितनी जोर से रोए जा रहा है ? क्या इसे मारना है ? नीचे उतार इसे ।' गोरधनभाई को अपनी भूल ध्यान में आई, उन्होंने बालक को उतारकर भूमि पर खड़ा किया और बड़े भोले भाव से बोले, 'मैं तो सोच रहा था कि धोने के कपड़ों की गठरी ले जा रहा हूँ ।' गोरधनभाई की ऐसी आन्तरिक स्थिति थी ।

श्रीजीमहाराज का कृपापात्र ये भक्तराज गोरधनभाई मांगरोल में रहते थे । रामानन्द स्वामी के धाम में चले जाने के पश्चात् श्रीजीमहाराज ने मांगरोल में सदाव्रत चालू किया था । मांगरोल में गोरधनभाई की विशाल हवेली आज भी जैसी की तैसी खड़ी उनकी श्रीमंत स्थिति का परिचय दे रही है ।

श्रीजीमहाराज नीलकंठवर्णी के रूप में मांगरोल पधारे थे । जब वे डोसावाव पर बैठे हुए थे, तब गोरधनभाई उनके निकट आये, उन्होंने वर्णी स्वरूप महाराज की अलौकिक मूर्ति देखी और उनकी अन्तर्वृत्तियाँ नीलकण्ठवर्णी की ओर खिंच गईं । हाथ जोड़कर गोरधनभाई ने ब्रह्मचारी को भोजन कराने की इच्छा से पूछा ।

वर्णी ने कहा, 'जो भी तैयार हो ले आओ ।'

गोरधनभाई तो तुरन्त साटा, जलेबी आदि ले आए । वर्णी को भोजन-थाल देखकर आश्चर्य हुआ और गोरधनभाई ने कहा, 'आज हमारी बुआ पुतलीबाई की स्मृति में भोजन है, इसलिए घर में रसोई तैयार थी । हमारी बुआ रामानन्द स्वामी की शिष्या थी । इस पर नीलकण्ठवर्णी ने कहा, 'तुम्हारी बुआ तो नरक में गई है । रामानन्द स्वामी ने उस पर विश्वास करके कुछ सोना दिया था । उसने कपट करके यह सोना उन्हें नहीं लौटाया ।' ऐसा कहकर वर्णी ने गोरधनभाई को समाधि लगवा दी । समाधि अवस्था में उन्होंने देखा कि उनकी बुआ नरक में यातना भोग रही है । समाधि छूटने पर उन्होंने वर्णी से प्रार्थना की कि मेरी बुआ को नरक से बचाओ । महाराज ने पुतलीबाई को मोक्ष दिया ।

श्रीजीमहाराज गोरधनभाई की हवेली में सभा कर रहे थे । उस समय एक हरिभक्त आया उसने महाराज के पैर छुए और पेड़ों का थाल महाराज के सामने रखा । श्रीजीमहाराज ने गोरधनभाई से कहा, 'मुझे परसो ।' सेठ गोरधनभाई ने पेड़े उठा उठाकर अपने मुँह में रखने आरम्भ कर दिए । थोड़ी ही देर में सारे पेड़े चटकर गए । एक हरिभक्त को बड़ा आश्चर्य हुआ । जो पेड़े महाराज को खिलाने के लिए लाए गए थे वह तो यह गोरधनभाई चट कर गए ।

तब श्रीजीमहाराज ने रहस्य पर से परदा हटाते हुए कहा, 'गोरधनभाई जब खा रहे थे तब इन्होंने अपने अन्तर में मुझे बैठा रखा था । अतः आप ऐसा समझो कि उस अवस्था में मैंने ही खाए हैं । जैसे दुर्वासा ऋषि ने भगवान का ध्यान करके गोपियों की सोलह सहस्र एक सौ आठ थालियाँ जीम ली थीं तो भी यह कहा गया के वे उपवासी ही हैं । वैसे ही यह सेठ, तीनों अवस्थाओं में, अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप देखते हैं और मेरा भजन अखंड करते हैं । ये तो समदृष्टिवाले हैं । इनके लिए शक्कर और नमक समान हैं ।' श्रीजीमहाराज ने कहा कि गोरधनभाई और पर्वतभाई मेरे सच्चे भक्त हैं ।

तब किसी ने गोरधनभाई के सामने नमक और शक्कर रखी । उन्होंने शक्कर समझकर दोनों को खा लिया । जो सत्संगी नहीं थे उन्होंने कहा,

'गोरधनभाई की स्थिति अलौकिक है । कारण यह है कि ये इस लोक से ऊपर हैं ।'

एकबार श्रीजीमहाराज मुक्तानन्द स्वामी आदि संतों के साथ समुद्र स्नान के लिए मांगरोल पधारे । श्रीजीमहाराज ने गोरधनभाई को समुद्र में धक्का देकर गिरा दिया । जब वे पानी के अन्दर ही थे उनको समाधि लगवा दी । मुक्तानन्द स्वामी और अन्य बहुत शोक करने लगे कि गोरधनभाई तो डूब गये । हम उनके घर के लोगों को अब क्या उत्तर देंगे ?'

महाराज ने उन्हें बहुत देर तक समाधि में रखा और उन्हें वरुण लोक की रचना दिखाई । तत्पश्चात् महाराज ने चुटकी बजाई और गोरधनभाई तुरन्त पानी के बाहर आ गए ।

मांगरोल का एक दूसरे भक्त आनन्दजीभाई मुक्तानन्द स्वामी के पास गये और उन्होंने कहा, 'गोरधनभाई ने चार हजार रुपयों का सामान लाकर व्यापार आरम्भ किया है ।' जो भी उनकी दुकान पर सामान खरीदने जाता है, वे उसे उधार माल दे देते हैं और किताब में 'हस्ते स्वामिनारायण' लिख देते हैं । उन्होंने सब जगह स्वामिनारायण लिखा है और कुछ नहीं । मुक्तानन्द स्वामी ने इस विषय में श्रीजीमहाराज से बात की, उन्होंने कहा, 'महाराज ! गोरधनभाई के व्यवसाय की हालत बड़ी खराब है । वे प्रत्येक को स्वामिनारायण के नाम पर सामान दे देते हैं । हमारा मान कसौटी पर है ।'

श्रीजीमहाराज ने उत्तर दिया, 'अरेरे...! यह तो बहुत बुरा हुआ ।' *'समलोष्टाश्मकाञ्चन:'* उनके लिए लकड़ी, सोना, पत्थर, सब समान हैं ।'

तब मुक्तानन्द स्वामी समझे कि श्रीजीमहाराज तो गोरधनभाई की प्रशंसा कर रहे हैं ।

• • •

भगवान स्वामिनारायण
गुणातीतानंद स्वामी

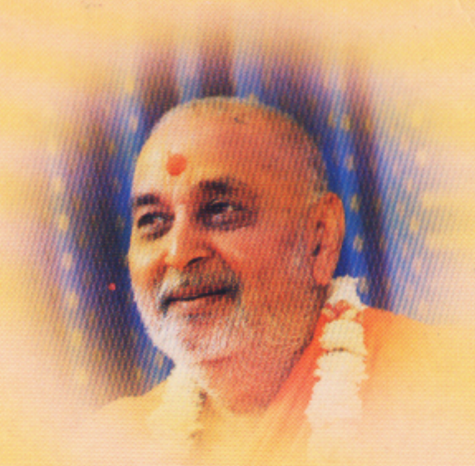

प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

प्रेरणामूर्ति प्रमुखस्वामी महाराज

'दूसरों की भलाई में अपना भला है....' इस जीवनसूत्र के साथ लाखों को ऊष्मा देने वाले प्रमुखस्वामी महाराज एक विरल संतविभूति है । (जन्म दि. ७-१२-'२१, चाणसद, जि. बड़ौदा)

भगवान स्वामिनारायण के वे पाँचवें आध्यात्मिक वारसदार हैं । वे ऐसे वात्सल्यमूर्ति संतवर्य हैं, जिनकी सन्निधि में शंकाएँ दूर होती हैं, आघात अदृश्य होते हैं और मन शांति का अनुभव करता है ।

छोटे बच्चों को उनके पास अपार वात्सल्य मिलता है । युवकों को उनके जीवन का सच्चा मित्र, सच्चा मार्गदर्शक मिलता है । प्रौढों को उनमें सयाना, व्यवहारकुशल और सहानुभूतिपूर्वक का सहारा प्रतीत होता है । गरीबों को स्वामीश्री में अपने त्राता मिलते हैं तो आदिवासियों को उनमें उद्धारक के दर्शन होते हैं । अलग अलग धर्मों के लोगों को उनमें, स्वधर्म-संवादिता का तेजस्वी सितारा दिखाई देता है । अफ्रिका के आदिवासियों और पछात वर्गों से लेकर अमेरिकावासी तक उन्होंने सभी को समान प्रेम प्रदान किया है । श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था की अनेकविध अंतर्राष्ट्रिय प्रवृत्ति के सूत्रधार स्वामीश्री ने, कठिन पुरुषार्थ से एक विराट चारित्र्यवान समाज खड़ा किया है ।

लोकहित के लिए, इस परोपकारी संत ने १२,५०० से अधिक गावों में विचरण किया है । २,५०,००० से भी अधिक घरों की व्यक्तिगत मुलाकात ली है । और ४,५०,००० से भी अधिक पत्र लिखे हैं ।

महाराष्ट्र के भूकंप-पीड़ितों से लेकर सौराष्ट्र के अकाल में त्राहिमाम् पुकारते पशुओं तक इन करुणामूर्ति संत की करुणा पहुँची है । इसलिए ही बौद्ध धर्म के प्रमुख श्री दलाई लामा से लेकर सामान्य से सामान्य व्यक्ति तक लाखों लोगों ने उन्हें हृदयपूर्वक चाहा है ।

उनकी सिद्धियों का रहस्य है : परब्रह्म का साक्षात्कार । अनेक मुमुक्षुओं ने उनकी छत्रछाया में उच्च आध्यात्मिक शिखर प्राप्त किये हैं ।

आबालवृद्ध में शील-संस्कार का सिंचन करती अनुपम प्रवृत्ति

सत्संग शिक्षण परीक्षा

सत्संग प्रारंभ

बालकों के लिए
बाल सत्संग परीक्षाएँ,
उच्चतर अध्ययन के लिए
सत्संग प्राज्ञ परीक्षाएँ

सत्संग प्रवेश

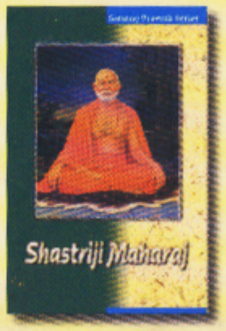

सत्संग परिचय (मुद्रण में)

सत्संग प्रवीण (मुद्रण में)

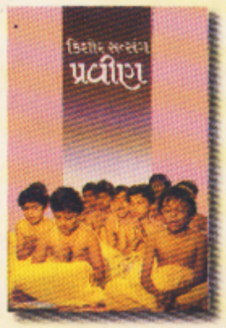

सत्संग शिक्षण परीक्षा
बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था, अमदावाद-४.